प्राणायाम से आधि-व्याधि निवारण

— ब्रह्मवर्चस

प्राणायाम से आधि-व्याधि निवारण

लेखक :

ब्रह्मवर्चस्

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१५ मूल्य : १६.०० रुपये

विषय-विभाजन

अध्याय	विषय	पृष्ठांक

परिशिष्ट

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ० प्र०)

अध्याय-१

'प्राण' का स्वरूप एवं तत्त्वज्ञान

'प्राणायाम क्या है, उसका स्वरूप व विधि क्या है, इससे क्या लाभ होते हैं—इस संबंध में बहुत प्रकार के मत हैं, अनेकानेक भ्रांतियाँ हैं। कोई प्राणायाम को सिद्धि प्राप्ति का साधन बताता है तो कोई इसे मात्र रक्त शोधन की एक प्रक्रिया बताता है। विज्ञान द्वारा प्रदत्त जानकारी यह बताती है कि ऋण आवेश वाले ऑक्सीजन के अणुओं का बाह्य जगत से वायु कोषों के माध्यम से रक्त में प्रवेश श्वसन प्रक्रिया का एक अंग है। उसी माध्यम से विजातीय द्रव्य बाहर फेंके जाते हैं, परंतु प्राणायाम यह नहीं है, डीप ब्रीदिंग (गहरा श्वास-प्रश्वाँस लेने की प्रक्रिया) प्राणायाम है। प्राणायाम जानने से पूर्व 'प्राण' शब्द को जानना होगा। संस्कृत में 'प्राण' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'अन्' धातु से हुई मानी जाती है अन् धातु-जीवनी शक्ति चेतना वाचक है। इस प्रकार 'प्राण' शब्द का अर्थ चेतना शक्ति होता है। प्राण और जीवन प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

प्राणायाम शब्द के दो खंड हैं—एक 'प्राण' दूसरा 'आयाम' है। प्राण का मोटा अर्थ है—जीवन तत्त्व और आयाम का अर्थ है—विस्तार। प्राण शब्द के साथ प्रायः वायु जोड़ा जाता है। तब उसका अर्थ नाक द्वारा साँस लेकर फेफड़ों में फैलाना तथा उसके ऑक्सीजन अंश को रक्त के माध्यम से समस्त शरीर में पहुँचाना भी होता है। यह प्रक्रिया शरीर को जीवित रखती है। अन्न जल के बिना कुछ समय गुजारा हो सकता है, पर साँस के बिना तो दम घुटने से कुछ समय में ही जीवन का अंत हो जाता है। प्राण तत्त्व की महिमा जीवन धारण के लिए भी कम नहीं है।

सूक्ष्म दृष्टि से प्राण का अर्थ ब्रह्मांड भर में संव्याप्त ऐसी ऊर्जा है जो जड़ और चेतन दोनों का समन्वित रूप है। जीवधारियों की दो हलचलें हैं, एक ज्ञान परक, दूसरी क्रिया परक, दोनों को ही गतिशील रखने के लिए संव्याप्त प्राण ऊर्जा से पोषण मिलता है। इसी आधार पर जीवधारियों का अस्तित्व है। प्राण शक्ति की गरिमा सर्वोपरि होने और उसी के आधार पर निर्वाह करने के कारण जीवधारियों को प्राणी कहते हैं। प्रकृति अनुदान के रूप में हर प्राणी को मात्र उतनी ही प्राण ऊर्जा मिलती है जिससे वह अपने जीवित रहने के आवश्यक साधन प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त यदि किसी को कुछ 'महत्त्वपूर्ण' प्राप्त करना होता है, तो उसके लिए उसे विशेष पुरुषार्थ करना पड़ता है। उसे संकल्प बल से ब्रह्मांड चेतना में से प्राण ऊर्जा की अभीष्ट मात्रा प्रयत्न पूर्वक खींचनी पड़ती है और साँस के सहारे जिस तरह 'ऑक्सीजन' समस्त शरीर में पहुँचाई जाती है उसी प्रकार वह प्राण ऊर्जा की अतिरिक्त मात्रा भी पहुँचानी पड़ती है। इस प्रकार योगशास्त्रानुमोदित विशेष क्रिया-प्रक्रियाओं द्वारा उस अतिरिक्त प्राण को अभीष्ट अवयवों एवं संस्थानों तक पहुँचाना पड़ता है, इस प्रकार प्राण का आयाम बन पड़ता है और प्राणायाम का आध्यात्मिक प्रयोजन पूरा होता है।

सृष्टि में जो चैतन्यता दिखाई पड़ रही है उसका मूल कारण प्राण है। अनंत सृष्टि प्रवाह में प्राणतत्त्व ही हिलोरें ले रहा है। यही संसार की उत्पत्ति का कारण है। समस्त सृष्टि कल्प के आदि और अंत में आकाश रूप में परिणति हो जाती एवं सभी शक्तियाँ प्राण में ही विलीन हो जाती हैं। नई सृष्टि में प्राणत्व ही अभिव्यक्त होकर विभिन्न संरचनाओं के रूप में दृष्टिगोचर होता है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण एवं अणुओं की चुंबकीय शक्ति में प्राण शक्ति ही क्रीड़ा कल्लोल कर रही है। चेतना जीवों की हलचलों में वही प्रेरणा भर रही है। उत्पादन, अभिवर्धन का मूल कारण प्राण स्पंदन ही है।

यही जीवों को नवीन सृष्टि के लिए परस्पर आबद्ध करता, प्रेरणा करता तथा संतति उत्पादन का अतिरिक्त दायित्व वहन करने को बाध्य करता है। काम की प्रचंड शक्ति प्राण का ही एक भाग है। इसका निम्नस्तरीय लक्ष्य है—काम-वासना से संतति उत्पादन तथा

उच्चस्तरीय स्वरूप है विचारों की उत्कृष्टता, भावनाओं की उदात्तता, ईश्वरीय प्रेम, आदर्शों, सिद्धांतों के प्रति असीम प्रेम।

विचारों की प्रखरता एवं वाणी की तेजस्विता प्राणतत्त्व की बहुलता का परिचायक है। विचार इसी से सशक्त बनते तथा दूसरों पर प्रभाव छोड़ते हैं। विचारक, मनीषी, संत महापुरुषों के विचार एवं उपदेश निकट के ही नहीं दूरवर्ती व्यक्तियों को भी प्रभावित करते हैं। उन्हें श्रेष्ठता की ओर बढ़ चलने की प्रेरणा देते हैं। यह प्राण शक्ति का ही प्रभाव है, जो अपने विचारों के अनुसार अन्यों को चलने, अनुगमन करने को बाध्य करती है।

स्थूल एवं सूक्ष्म जगत की समस्त शक्तियाँ प्राण की ही अभिव्यक्ति हैं। प्राणायाम साधना का लक्ष्य इस तत्त्व को जानना तथा उस पर नियंत्रण प्राप्त करना है। नियंत्रित प्राण इतनी बड़ी संपदा है जिसके समक्ष संसार की सभी भौतिक संपदाएँ छोड़ी जा सकती हैं। उस महाशक्ति से प्रकृति को भी वशीभूत किया जा सकता है।

वेदों में एक उपाख्यान आता है जिसमें जिज्ञासु ऋषि से पूछता है—**"कस्मिंतु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञतो भवति"** ? ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसका ज्ञान होने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। ऋषि उत्तर देते हुए कहते हैं कि "यह प्राण तत्त्व ही है जिसे जान लेने के बाद कुछ जानना अवशेष नहीं रहता।"

यदि कोई व्यक्ति संपूर्ण प्रकृति के तत्त्वों को जानने का प्रयास करे तो उसे अनंत समय लग सकता है। इसी कारण श्रुति कहती है कि "प्राण तत्त्व को समझने—उस पर नियंत्रण प्राप्त करने से प्रकृति के समस्त रहस्यों को जाना—अनुभव किया जा सकता है। प्राण पर विजय प्राप्त कर लेने का अर्थ है—प्रकृति पर विजय प्राप्त करना, प्रकृति की अन्य शक्तियाँ प्राण संपन्न व्यक्ति की अनुगामिनी होती हैं।

सृष्टि में प्रवाहित अनंत प्राण प्रवाह का एक क्षुद्र अंश चेतन जीवों में विद्यमान है। अनंत प्राण समुद्र की यह सबसे निकट की तरंग है। इस पर यदि नियंत्रण किया जा सके तो उस प्राण के महासमुद्र से संपर्क जोड़ा जा सकता है। संसार के सभी धर्म

संप्रदायों की साधना प्रणाली में यह प्राण अभिवर्धन का लक्ष्य अनिवार्य रूप से जुड़ा है।

प्राण समस्त प्राणियों में जीवनी शक्ति के रूप में विद्यमान है। वैचारिक प्रखरता उसकी उच्चतम अभिव्यक्ति है, काम-वासना निम्नतम है। इसके अतिरिक्त भी प्राण की वृत्तियाँ हैं जिन्हें हम जन्म-जात प्रवृत्ति अथवा ज्ञान रहित चित वृत्ति भी कहते हैं। अचेतन मन द्वारा संचालित प्रवृत्तियों में भी प्राण तत्त्व की ही अव्यक्त भूमिका होती है। शरीर की समस्त क्रिया प्रणाली—चलना, खाना, पीना, सोना आदि इसी के द्वारा संचालित हैं।

विश्व में अस्तित्व के प्रत्येक स्तर पर एक अखंड वस्तु राशि दिखाई पड़ती है। वही भौतिक संसार के विभिन्न रूपों में व्यक्त हो रही है। प्रत्येक वस्तु इस अनंत प्राण की एक भँवर है। प्राण तत्त्व इन भँवरों में प्रविष्ट होकर नाम रूप गढ़ता है। लाखों प्रकार की योनियाँ प्राण की ही विभिन्न स्तर की अभिव्यक्तियाँ हैं। सूक्ष्म जगत् में भी प्रविष्ट करने पर वह अखंडता दिखाई पड़ती है। ईथर को संपूर्ण जड़ जगत् को सूक्ष्मावस्था माना जाता है। वह प्राण की स्पंदनशील सूक्ष्म स्थिति है।

यह ब्रह्मांड व्यापी सूक्ष्म प्राण शक्ति ही है जो आँखों से दिखाई न देने पर अध्यात्म साधनाओं के माध्यम से ग्रहण, आत्मसात् करने पर प्राण—प्रयोग बन जाती हैं। इसे ही खींचकर अपने विकसित सूक्ष्म शरीर धारण कर योगीजन दिव्य क्षमता संपन्न बनते हैं अध्यात्म विज्ञान की यह विद्या आत्मिक कायाकल्प में व मानसिक क्षमताओं के अभिवर्धन में बड़ी सफलता पूर्वक प्रयुक्त की जा सकती है, इसे अपने जीवन में परीक्षित कर ऋषियों ने ग्रंथों में भी उद्धृत किया है।

प्राणतत्त्व समस्त भौतिक और आत्मिक संपदाओं का उद्गम केंद्र है। सर्वत्र संव्याप्त है। उसमें से जो जितनी अंजलि भरने और पीने में समर्थ होता है वह उसी स्तर का महामानव बनता चला जाता है। प्राण शक्ति का पर्यायवाची है। उसकी परिधि में भौतिक संपदाएँ और आत्मिक विभूतियाँ दोनों ही आती हैं।

शारीरिक परिपुष्टि के रूप में ओजस्वी, मनोबल संपन्नता के रूप में मनस्वी, सामाजिक सहयोग—सम्मान के रूप में यशस्वी और आत्मिक उत्कृष्टता के रूप में तेजस्वी बन जाता है। यह चतुर्विध क्षमताएँ जिस मूल स्रोत से उत्पन्न होती हैं उसे प्राण शक्ति कहते हैं। प्राण साधना इन्हीं सिद्धियों को प्राप्त कर सकना संभव बनाती है।

अँग्रेजी में श्वाँस के अर्थ में प्राण का प्रयोग होता है। यह भ्रम शायद इसलिए पैदा हुआ कि प्राणायाम में श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया ही प्रधान होती है। रेचक, पूरक, कुंभक के माध्यम से प्राणायाम किया जाता है। उसमें साँस को अमुक क्रम से छोड़ने, खींचने की विधि की प्रमुखता रहने से प्राण को उसी रूप में समझ लिया गया है।

स्वामी विवेकानंद ने प्राण की विवेचना 'साइकिक फोर्स' के रूप में की है। इसका मोटा अर्थ मानसिक शक्ति हुआ। मोटे रूप में तो यह कोई मस्तिष्कीय हलचल हुई, पर प्राण तो विश्वव्यापी है। यदि समष्टि को मन की शक्ति कहें या सर्वव्यापी चेतना शक्ति का नाम दें, तो ही यह अर्थ ठीक बैठ सकता है। व्यक्तिगत मस्तिष्कों की मानसिक शक्ति की क्षमता प्राण के रूप में नहीं हो सकती। संभवतः स्वामीजी का संकेत समिष्ट मन की सर्वव्यापी क्षमता की ओर ही रहा होगा।

मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं के रूप में प्राण शक्ति के प्रकट होने का, प्रखर होने का परिचय प्राप्त किया जा सकता है, पर वह मूलतः इन सब जाने हुए विवरणों से कहीं अधिक सूक्ष्म है।

वैदिक साहित्य में प्राण के साथ वायु विशेषण भी लगा है और उसे 'प्राण वायु' कहा गया है। उनका तात्पर्य ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि वायु विकारों से नहीं वरन् उस प्रवाह से है जिसकी गतिशील विद्युत तरंगों के रूप में भौतिक विज्ञानी चर्चा करते हैं। अणु विकिरण, ताप, प्रकाश आदि की शक्ति धाराओं के मूल में संव्याप्त सत्ता कहा जा सकता है। यदि इसके अध्यात्म स्वरूप का विवेचन किया जाए तो अँग्रेजी का 'लेटेंट लाइट' शब्द इसके लिए लगभग अधिक उपयुक्त बैठता है।

प्राण को तत्त्वदर्शियों ने तो दो भागों में विभक्त किया है—(१) अणु (२) विभु। अणु वह जो पदार्थ जगत में सक्रियता बनकर लहलहा रहा है। इन दो विभागों को आधिदैविक, कास्मिक और आध्यात्मिक माइक्रोकास्मिक अथवा हिरण्यगर्भ कहा जाता है।

आधिदैविकेन समष्टिव्यष्टिरूपेण हरेण्यगर्भेण प्राणात्मनैवैतद् विभुत्वमाम्नायते नाध्यात्मिकेन।

—ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य

समष्टि रूप हिरण्यगर्भ विभु है। व्यष्टि रूप आधि

—दैविक अणु।

इस अणु शक्ति को लेकर ही पदार्थ विज्ञान का सारा ढाँचा खड़ा किया गया है। विद्युत, ताप, प्रकाश, विकिरण आदि की अनेकानेक शक्तियाँ उसी स्रोत से गतिशील रहती हैं। अणु के भीतर जो सक्रियता है वह सूर्य की है, यदि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक न पहुँचे तो यहाँ सर्वथा नीरवता, स्तब्धता परिलक्षित होगी। कहीं कुछ भी हलचल दिखाई न पड़ेगी। अणुओं की जो सक्रियता पदार्थों का आविर्भाव, अभिवर्धन एवं परिवर्तन करती है उसका कोई अस्तित्व दिखाई न पड़ेगा। भौतिक विज्ञान ने इसे सूर्य द्वारा पृथ्वी को प्रदत्त—अणु शक्ति के रूप में पहचाना है और उससे विभिन्न प्रकार के आविष्कार करके सुख साधनों का आविर्भाव किया है, शक्ति के कितने ही प्रचंड स्रोत करतलगत किए हैं, पर यह नहीं मान बैठना चाहिए कि विश्वव्यापी शक्ति भंडार मात्र अणु शक्ति की भौतिक सामर्थ्य तक ही सीमाबद्ध है। वस्तुतः यह विपुल संपदा इससे भी कई गुना अधिक है, जड़-चेतन सभी में समान रूप से संव्याप्त है।

जड़ जगत में शक्ति तरंगों के रूप में संव्याप्त सक्रियता के रूप में प्राण का परिचय दिया जा सकता है और चेतन जगत में उसे संवेदना कहा जा सकता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया इसी संवेदना के तीन रूप हैं। जीवंत प्राणी इसी के आधार पर जीवित रहते हैं। उसी के सहारे चाहते, सोचते और प्रयत्नशील होते हैं। इस जीवनी शक्ति की जितनी मात्रा जिसे मिल जाती है वह उतना ही अधिक प्राणवान कहा जाता है। आत्मा को महात्मा, देवात्मा और परमात्मा बनने का

अवसर इस प्राण शक्ति की अधिक मात्रा उपलब्ध करने पर ही संभव होता है। चेतन की विभु सत्ता जो समस्त ब्रह्मांड में संव्याप्त है चेतन प्राण कहलाती है। उसी का अमुक अंश प्रयत्न पूर्वक अपने में धारण करने वाला प्राणी—प्राणवान एवं महाप्राण बनता है।

इस पुस्तक का उद्देश्य हर परिजन को प्राणायाम के इस गूढ़ विवेचन द्वारा मात्र शास्त्रज्ञान न कराकर प्राणशक्ति की महत्ता समझाना, प्रयोगों द्वारा उसे विभिन्न मनोविकारों के शमन तथा प्रसुप्त मानसिक सामर्थ्य के जगाने में लगाना है। अगले पृष्ठों में इसके और भी विस्तार की, आधि-व्याधि निवारण में इनके प्रयोगों की, मस्तिष्क में अवस्थित विभिन्न शक्ति केंद्रों को जगाकर उससे लाभान्वित होने की चर्चा की गई है।

❒❒

अध्याय—२

प्राणशक्ति से संकल्प-बल का अभिवर्धन
प्रसुप्त का जागरण

जीवन का सार तत्त्व प्राण है यह प्राण ही प्रगति का आधार है। समृद्धि उसी के मूल्य पर खरीदी जाती है। सिद्धियों और विभूतियों का उद्गम स्रोत यही है। यह प्राण-तत्त्व अपने भीतर प्रचुर परिमाण में भरा पड़ा है। उसका चुंबकत्व बढ़ा देने पर विश्व प्राण में से भी उसे अभीष्ट मात्रा में उपलब्ध और धारण किया जा सकता है। मानवी सत्ता में सन्निहित इस प्राण भंडार को प्राणमय कोश कहते हैं। सामान्यतया यह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है और उससे शरीर निर्वाह भर के काम हो पाते हैं। उसे साधना विज्ञान के आधार पर जागृत किया जा सके तो सामान्य में से असामान्य का प्रकटीकरण हो सकता है। प्राण की क्षमता असीम है। प्राण साधना से इस असीमता की दिशा में बढ़ चलना—प्रचुर सशक्तता प्राप्त कर सकना संभव हो जाता है।

विज्ञानवेत्ताओं ने इस संसार में ऐसी शक्ति का अस्तित्व पाया है जो पदार्थों को हलचल करने के लिए और प्राणियों को सोचने के लिए विवश करती है। कहा गया है कि यही मूल प्रेरक शक्ति है जिससे निःचेष्ट को सचेष्ट और निस्तब्ध को सक्रिय होने की सामर्थ्य मिलती है। वस्तुएँ, शक्तियाँ और प्राणियों में विविध विधि हलचलें इसी के प्रभाव से संभव हो रही हैं। समस्त अज्ञात और विज्ञात क्षेत्र के मूल में यही तत्त्व गतिशील है और अपनी गति से सबको अग्रगामी बनाता है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में इसी जड़ चेतन स्तरों की समन्वित क्षमता का नाम प्राण होना चाहिए। पदार्थ को ही सब कुछ मानने वाले ग्रेविटी, ईथर, मैगनेट के रूप में उसकी व्याख्या करते हैं

अथवा इन्हीं की उच्चस्तरीय स्थिति बताते हैं। चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व मानने वाले विज्ञानी उसे साइकिक 'लेटेंट हीट' कहते हैं।

ऋषियों का अभिप्राय प्राण से क्या है, इसका परिचय उस शब्द के नामकरण के आधार पर प्राप्त होता है। 'अनु' धातु जीवन, शक्ति, चेतनावाचक है। इस प्रकार उसका अर्थ प्राणियों की जीवनी शक्ति के रूप में किया जाता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि चेतन की जीवनी शक्ति क्या हो सकती है। यहाँ उसका उत्तर 'संकल्प बल' के रूप में दिया जा सकता है। जिजीविषा से लेकर प्रगतिशीलता तक उसके असंख्य रूप हैं। अंतःकरण की आकाँक्षा ही विचार शक्ति और क्रिया शक्ति को उत्तेजना एवं दिशा देती है। मात्र आकाँक्षा रहने से काम नहीं चलेगा। उसे तो कल्पना या ललक मात्र कहा जा सकता है। आकांक्षा के साथ उसे पूरा करने की साहसिकता भी जुड़ी हुई हो, तो उसे संकल्प कहा जा सकेगा। संकल्प में आकाँक्षा, निष्कर्ष, योजना और अग्रगमन के लायक अभीष्ट साहसिकता जुड़ी रहती है। यह संकल्प ही मनुष्य जीवन का वास्तविक बल है, उसी के सहारे पतन उत्थान के आधार बनते हैं। परिस्थितियाँ इसी संकल्प भरी मन स्थिति के आधार पर खिंचती चली आती हैं। इसी संकल्प तत्त्व को चेतन का प्राण कहा जा सकता है।

इस संकल्प बल के सहारे ही मनुष्य कुविचारों से जूझता हर पल उनसे संघर्ष करता है। अधोगामी प्रवाह से ऊपर उठाने वाली, मानव को मानसिक दृष्टि से प्रखर-समर्थ बनाने वाली शक्ति यही है। इसका अक्षय भंडार प्रकृति के अंतराल में भरा पड़ा है। शरीर बल हो भी तो वह व्यर्थ है, यदि मनुष्य में ममोबल की, जिजीविषा की, संकल्प बल की शक्ति नहीं है। प्राण प्रयोगों-प्राणोपचार का प्रयोजन उद्देश्य यही है—स्वयं अपने लिए व दूसरों को प्रभावित करने के लिए इस ऊर्जा को अपने अंदर धारण करना, अपनी काया को सशक्त बनाना तथा उससे स्वयं व दूसरों को भी लाभान्वित करना। साधारण श्वाँस-प्रश्वाँस प्रक्रिया से भी ऊँचे आयाम की यह प्राण प्रयोग साधना अध्यात्म विद्या का मर्म मानी जाती है। मूलतः भावना

प्रधान ये क्रियाएँ सही मार्ग दर्शन में की जाने, पर व्यक्ति को बढ़ाती हैं, उसका मानसिक स्तर ऊँचा उठाती हैं।

प्राण को कई व्यक्ति वायु या साँस समझते हैं और श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया के साथ वायु का भी आवागमन निरंतर चलता रहता है उसके साथ प्राण की संगति बिठाते हैं। यह भूल इसलिए हो जाती है कि अक्सर प्राण के साथ 'वायु' शब्द और जोड़ दिया जाता है। यह समावेश संभवतः वायु के समान मिलते-जुलते गुण प्राण में होने के कारण उदाहरण की तरह हुआ हो चूँकि प्राण भी अदृश्य हैं और वायु भी। प्राण भी गतिशील है और वायु भी। प्राण भी सारे शरीर एवं विश्व में व्याप्त है और वायु भी। इसलिए प्राण की स्थिति मोटे रूप में समझने के लिए उसे वायु के उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है, किंतु वास्तविक बात ऐसी नहीं है। वायु पंचतत्त्वों में से एक होने के कारण जड़ है, किंतु प्राण चेतना का पुंज होने से उसका वस्तुतः कोई सादृश्य हो नहीं सकता। प्राण को प्रकृति की उत्कृष्ट सूक्ष्म शक्तियों (नेचर्स फाइनर फोर्सेज) में से एक कह सकते हैं। भारतीय योगियों ने इसे मानसिक या इच्छा संबंधी श्वाँस प्रक्रिया के रूप में लिया है। वास्तव में ऐसी ही दिव्यधारा के प्रभाव से उच्चकोटि की आत्मिक शक्तियाँ प्राप्त होनी संभव हैं। श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया का प्रभाव तो फेफड़ों तक अधिक से अधिक भौतिक शरीर के बलवर्धन तक सीमित हो सकता है। प्राणायाम से जो संकल्प बल की अभिवृद्धि होती है वह मनुष्य को स्थूल ही नहीं सूक्ष्म कार्य-कलेवर को भी समर्थ बनाती है, उसे संघर्षों से जूझने योग्य सामर्थ्य देती है।

कषाय-कल्मषों और कुसंस्कारों का निराकरण, उन्मूलन इस प्रचंड संकल्प शक्ति के सहारे ही संभव होता है। ढीले-पोले स्वभाव वाले आत्म परिष्कार की बात सोचते भर हैं, पर वैसा कुछ कर नहीं पाते। कल्पनाओं-जल्पनाओं में उलझे रहते हैं। प्रचंड संकल्प के बल पर उत्पन्न आत्मिक साहस ही दुर्भावनाओं, दुष्प्रवृत्तियों और कुसंस्कारों से जूझता है। उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ चलने के लिए प्रेरणा और अवरोधों से जूझने की क्षमता उसी आत्मबल से मिलती है जिसे प्राण कहा जाता है। प्राण देवता के अनुग्रह से मनोनिग्रह और विकृतियों के

उन्मूलन होने की बात वृहदारण्यक उपनिषद् इस प्रकार कही गई है—

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य यत्रासां दिशामंतस्तद्गमयांचकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात् तस्मान्न जनमियान्नांतमियान्नेत्पाप्मानं मृत्युमन्ववायानीति।

—वृ० उ० १।३।१०

प्राण देवता ने इंद्रियों के पापों को दिगंत तक पहुँचा कर विनष्ट कर दिया, क्योंकि वह पाप ही इंद्रियों के मरण का कारण था। इन कल्मषों को इस निश्चय के साथ भगाया कि पुनः न लौट सके।

अथ चक्षुरत्त्यवहत् त यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत्। सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रांतस्तपति।

—वृ० उ० १।३।१४

जब प्राण ही प्रेरणा से चक्षु निष्पाप हुए तो वे आदित्य बनकर अमर हो गए और तपते हुए सूर्य की तरह अपने तप से ज्योतिर्मय हो उठे।

शास्त्र की दृष्टि में प्राण-तत्त्व की व्याख्या में इस प्रकार होती है।

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कोषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्राह्मणो मनो दूतं वाक्परिवेष्ट्री चक्षुर्गात्र श्रोत्रं संश्रावयितृ यो ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वेद दतवान्भवति यश्चक्षु गोप्तृमान्भवति यः श्रोतं संश्रावयितृ संश्रावयितृमान्भवति यो वाचं परिवेष्ट्री परिवेष्ट्रीमाभवति।

—कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद

यह प्राण ही ब्रह्म है। यह सम्राट है। वाणी उसकी रानी है। कान उसके द्वारपाल हैं। नेत्र अंगरक्षक, मन दूत, इंद्रियाँ दासी, देवताओं द्वारा यह उपहार उस प्राण ब्रह्म को भेंट किए गए हैं।

प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्या। तं मामायुरमृत मित्युपास्स्वाऽऽयुः प्राणः प्राणोवा आयुः यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः प्राणेन हि एवमस्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।

—शाखायन

मैं ही प्राण रूप प्रज्ञा हूँ। मुझे ही आयु और अमृत जानकर उपासना करो। जब तक प्राण हैं, तभी तक जीवन है। इस लोक में अमृत्व प्राप्ति का आधार प्राण ही है।

बिलियम जी फेरिंग का यह कथन है कि मनःस्थिति में श्वाँस क्रिया का प्रभावित होना जिस प्रकार एक तथ्य है उसी प्रकार यह भी एक तथ्य है कि श्वाँस की गति में विशेष प्रकार के परिवर्तन करके मनःस्थिति को बदला जा सकता है। इससे सामयिक हेर-फेर ही नहीं इच्छा, रुचि एवं स्वभाव प्रकृति में भी अंतर किया जा सकता है।

जिस तरह शरीर और मन की स्थिति का प्रभाव श्वाँस की गति, विगति, गहराई, ऊष्मा आदि पर पड़ता है उसी प्रकार श्वाँस की साधना में शरीर और मन के विभिन्न संस्थानों को भी प्रभावित किया जा सकता है। विश्व ब्रह्मांड में संव्याप्त प्राण-सत्ता की अभीष्ट मात्रा खींचने और धारण करने के लिए श्वाँस क्रिया के उपयुक्त उपाय काम में लाने पड़ते हैं। प्राणायाम के नाम से इसी विज्ञान का वर्णन शास्त्रकारों ने किया है।

प्राण तत्त्व का मनःसंस्थान से घनिष्ट संबंध है। साहसिकता के अभाव में मन दुर्बल पड़ता है, उसकी चिंतनशीलता व सक्रियता शिथिल पड़ जाती है। शरीर से दुर्बल होने पर भी मनस्वी व्यक्ति सुदृढ़ होता है, इसके विपरीत काया की दृष्टि से सुदृढ़ व्यक्ति भी मनोबल के अभाव में दीन-हीन, अकर्मण्य निराश, भयभीत बना रहता है। प्राण-शक्ति ही साहस बनकर उभरती और मनोबल का आधार बनती है।

मन पर नियंत्रण कर सकने वाला अंकुश उसके साथी प्राण के ही हाथ में है। मन की चंचलता प्रसिद्ध है। एक स्थान पर न टिक पाने से किसी महत्त्वपूर्ण दिशा में गंभीरतापूर्वक सोच सकना और

तन्मयतापूर्वक प्रस्तुत कार्य कर सकना संभव नहीं होता। एकाग्रता और तत्परता बिना किसी में भी सफलता नहीं मिल सकती। जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण कार्य दत्त-चित्त होकर करने से ही संपन्न होते हैं। चंचलता प्रगति पथ की सबसे बड़ी बाधा है इसके रहते हुए सुयोग्य व्यक्ति भी पग-पग पर ठोकरें खाते और असफल होते देखे जाते हैं। भौतिक क्षेत्र की भाँति आत्मिक क्षेत्र की सफलताएँ भी चंचलता के निरोध पर निर्भर है। योग की परिभाषा करते हुए महर्षि पातंजलि ने उसे चित्त-वृत्तियों का निरोध बताया है। इस चित्त-प्रवृत्ति को दो रूपों में देखा जाता है—एक तो अस्थिर चंचलता, दूसरे पाशविक कुसंस्कारों की ओर रुझान। इन दोनों ही अवांछनीयताओं पर नियंत्रण स्थापित करने से चित्त-वृत्ति निरोध की योग साधना संभव होती है।

मन पर नियंत्रण करने के लिए शास्त्रकारों से प्राणायाम साधना पर बहुत बल दिया है। दोनों की परस्पर घनिष्ठता बताते हुए कहा है कि यदि प्राण पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके तो मनोनिग्रह जैसा कठिन काम सरल बन जाएगा।

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते।।
हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः।।

—हठयोग प्रदीपिका ४।२१

जिसने प्राण वायु को जीता उसने मन जीत लिया। जिसने मन जीता उसने प्राण जीत लिया। चित्त की चंचलता के दो ही कारण हैं, एक वासना का दूसरा प्राण वायु का चंचल होना। इनमें से एक के नष्ट हो जाने पर दोनों का नाश हो जाता है।

चले वाते चले बिंदुर्निश्चले निश्चलो भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।

—गो० प० १।६०

प्राण वायु चलायमान रहने से बिंदु चलायमान रहता है। प्राण निश्चल हो जाने से वीर्य भी निश्चल हो जाता है। समर्थ स्थिरता प्राप्त करने के लिए योगी प्राणायाम करे।

सोम्यैतन्मनौ दिशं, दिशं पतित्वान्यत्रायनमलब्ध्वाप्राणमेवोपश्रयते, प्राणबंधन हि सौम्य मन इति।

—छांदो० ६।८।२

जिस प्रकार डोरी से बँधा हुआ पक्षी घूमघाम कर अपने मूल आश्रय पर ही आ जाता है, उसी तरह से सौम्य मन कहीं दूसरी जगह आश्रय न पाने पर घूमघाम कर प्राण का आश्रय लेता है क्योंकि मन प्राण से ही बँधा हुआ है।

नानाविधैर्विचाररैस्तु न साध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयः प्राणः प्राणस्य जय एव हि।।

—योग बीज

अनेक प्रकार के विचारों से मन साध्य नहीं होता है इससे प्राणवायु के जीतों से ही मन जीता जाता है।

चित्तं न साध्यं विविधैर्विचारै-
र्वितर्कवादैरपि वेदवादिभिः।
तस्मात्तु तस्यैव हि केवलं जयः
प्राणो हि विद्येत न कश्चिदन्यः।।

—योग रहस्य

विविध विचारों, तर्कों और अध्ययन भ्रमण आदि से चित्त का समाधान नहीं होता, मनोविग्रह तो प्राणायाम से ही संभव है।

हठिनामधिकस्त्वेकः प्राणायाम परिश्रमः।
प्राणायामे मनः स्थैर्यं स तु कस्य न सम्मतः।।

—बोधसार

हठयोगियों का मुख्य साधन श्रम-साध्य प्राणायाम है, यह अन्यान्य योगियों की साधना से अधिक कष्ट-साध्य है, परंतु वह

प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर मन स्थिर हो जाता है यह कौन नहीं करेगा।

इंदिय विकार—अनियंत्रित वासना प्रवाह का कारण शारीरिक नहीं मानसिक ही होता है। इंद्रियों पर मन का नियंत्रण है। मन विकारग्रस्त होगा तो इंद्रियों की चंचलता भी उबरेगी और वे कुकृत्य कर सकेंगी। यदि मन पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके तो वासना पर अंकुश स्वयमेव लग जाता है। प्राणायाम से मनोनिग्रह-मनोनिग्रह से वासनाजन्य विकारों की रोकथाम संभव होती है। असंयम के लिए उत्तेजित करने वाले विकृत मन को कुमार्ग त्यागने के लिए सहमत करना प्राणायाम की सुनियोजित साधना-पद्धति अपनाने से संभव हो सकता है। इस संबंध में साधना विज्ञान का मंतव्य इस प्रकार है—

प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा।।

—योगचूड़ामणि उपं० १०८।१०६

प्राणायाम की अग्नि पाप रूपी ईंधन को जलाकर पार कर देती है और वह सेतु के समान संसार सागर से पार होने का मार्ग खोलता है।

आध्यात्म साधना में प्राणायाम को योगाभ्यास का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। उससे मात्र मनोनिग्रह का लाभ ही नहीं मिलता अन्य सूक्ष्म संस्थानों का भी परिशोधन होता है। शारीरिक आरोग्य का लाभ सर्वविदित है। फेफड़े सुदृढ़ होने, अधिक मात्रा में प्राणवायु के शरीर में प्रवेश करने से जीवन तत्त्व भी अधिक मिलते हैं और परिशोधन की गति भी तीव्र होती है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरों पर—स्वास्थ्य संवर्धन और मानसिक परिष्कार पर-प्राणायाम का प्रत्यक्ष प्रभाव होता है, कारण शरीर के भाव संस्थान पर भी इस साधना की उपयुक्त प्रतिक्रिया होती है। कुसंस्कारों, दोष-दुर्गुणों का निराकरण होता है। आत्मिक पवित्रता बढ़ती है। अंतःकरण में श्रेष्ठ संस्कारों का उभार होने लगता है। ऐसी स्थिति बनते चले तो आत्मिक प्रगति में किसी प्रकार का संदेह न रह जाएगा। कहा भी है—

दह्यंते ध्यायमानाना धातूनां हियथा मलाः।
तथेंद्रियाणां दह्यंते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

—मनु०

जैसे अग्नि में डालने से धातुओं के मल जल जाते हैं। वैसे ही प्राणायाम करने से इंद्रियों के विकार दूर हो जाते हैं।

यथा पर्वतधातूनां दह्यंते धर्मनान्मलाः।
तथेंद्रियकृता दोषः दह्यंते प्राणधारणात्।।

—अमृतनादोपनिषद्

जिस प्रकार सोने को तपाने से खोट जल जाते हैं उसी प्रकार इंद्रियों के विकार प्राणायाम से जलकर नष्ट होते हैं।

तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायाम परो भवेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति।।

—वायु पुराण

इसलिए योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम में परायण होना चाहिए। वह फिर समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है।

प्राणायाम की शास्त्रवर्णित महत्ता एवं शरीरत्रय पर इसकी प्रतिक्रिया का उपरोक्त वर्णन यही सिद्ध करता है कि मानव के अपने आंतरिक परिशोधन पवित्रता संवर्धन मानसिक एवं शारीरिक आरोग्य लाभ की प्राप्ति तथा उच्चतम लक्ष्य पूर्णता तक पहुँचने के लिए भी प्राणयोग की साधना सर्वोत्तम है। शक्ति उपार्जन की इस प्रक्रिया के स्वरूप को सही अर्थों में समझा जा सके तो कई गुना अधिक लाभ उठा सकना संभव है।

शक्ति उत्पन्न करने का एक ही तरीका है—घर्षण। भौतिक जगत में इस प्रयोग से शक्तिशाली उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं। आत्मिक जगत में भी यही प्रक्रिया प्रयुक्त की जाती है। प्राणायाम साधना इस घर्षण प्रयोजन के लिए बहुत करके काम में लाई जाती है।

निर्जन सुनसान जंगलों में कई बार भयंकर आग लगती है और विस्तृत क्षेत्र के गीले-सूखे पेड़ों को जलाकर खाक कर देती है। यह मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की गई या लगाई गई नहीं होती, क्योंकि जो क्षेत्र सर्वथा निर्जन है, वहाँ वैसा होने की कोई संभावना नहीं होती। आग सूखे पेड़ों की टहनियाँ तेज हवा के कारण हिलने और आपस में टकराने के कारण उत्पन्न होती हैं। इस कार्य में बाँस सबसे अग्रणी है। झुरमुट में बाँस एक दूसरे से सटकर उगे होते हैं। तेज हवा से उनका टकराना स्वाभाविक है। सूखे बाँस आपस में रगड़ खाकर पहले गरम होते हैं, फिर चिनगारियाँ निकालने लगते हैं। वह आग बढ़ती और फैलती चली जाती है और दावानल का रूप धारण कर लेती है।

चकमक पत्थर के दो टुकड़े आपस में टकराकर चिनगारियाँ उत्पन्न करने की कला ही आदि मानव ने सीखी थी। पीछे लोहे और पत्थर को टकराकर भी आग निकालने की तरकीब निकाल ली गई। यज्ञ कार्यों में लकड़ियाँ रगड़ कर—अरणि-मंथन की क्रिया द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती थी। धूनी जलाकर अखंड अग्नि को सुरक्षित रखने का प्रचलन तो पीछे हुआ। आरंभ में रगड़ से ही अग्नि उत्पन्न की गई। उस समय की साधनहीन परिस्थितियों में यह अग्नि आविष्कार आज के रेडियो विज्ञान से भी बढ़कर महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ था और उसने मानव प्रगति को सौ गुना बढ़ाया था।

प्राणायाम में श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया को क्रमबद्ध, तालबद्ध, लयबद्ध बनाया जाता है और साँस लेने की साधारण-सी अनवरत प्रक्रिया की अव्यवस्था दूर करके उसे व्यवस्था के बंधनों में बाँधा जाता है।

सामान्यतः श्वाँस का आवागमन फेफड़ों में तथा अन्य अवयवों में सिकुड़ने-फैलने की हलचल उत्पन्न करता है। उसी से दिल धड़कता है—रक्त संचार होता है—माँस पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन क्रम चलता है जिस प्रकार पेंडुलम का हिलना घड़ी की गतिविधियों को स्व-संचालित रखने का आधार होता है उसी प्रकार श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया को एक प्रकार से शरीर की समस्त हलचलों का उद्गम केंद्र कहा जा सकता है। कहावतों में अक्सर ऐसे प्रसंग आते हैं—'भगवान के यहाँ से जितने श्वाँस मिले हैं उतने दिन ही जीना है।' थोड़े से

श्वाँस और शेष रहे हैं आदि। मृत्यु का मोटा ज्ञान श्वाँस चलना बंद हो जाने से किया जाता है। नाड़ी की धड़कन बंद होना श्वाँस बंद होने का ही लक्षण है।

साँस को जीवन कहा जाता है। तनिक गहराई से विचार करें कि हवा तो जड़ पंचतत्त्वों में गिनी जाती है उसकी प्रतिक्रिया हलचल भी हो सकती है। तेज हवा के पत्ते हिलते हैं—धूलि कण, तिनके आदि उड़ते हैं, पर इससे जीवन तो उत्पन्न नहीं होता। हवा में जब स्वयं ही जीवन नहीं पाया जाता तो वह प्राणी को जीवन कहाँ से दे सकती है ? यदि साँस लेने से जीवन का संबंध नहीं है तो उसे प्राण के अर्थ में क्यों प्रयुक्त किया जाता है और प्राण को जीवन का पर्यायवाची क्यों माना जाता है ?

बात यह है कि हवा मोटे तौर से एक पदार्थ प्रतीत होती है, पर उसकी भीतरी पर्तों में और भी महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ विद्यमान हैं। दूध में घी दिखाई तो नहीं पड़ता, पर वह उसमें रहता अवश्य है और अमुक विधि से उसे अलग निकाला भी जा सकता है। वनस्पतियाँ मोटे तौर पर हरियाली भी लगती है, पर प्रयोगशाला में उनका विश्लेषण करने पर प्रोटीन, नमक, चूना, चिकनाई आदि कितने ही स्तर के पदार्थ ढूँढ़े और निकाले जाते हैं। शरीर मोटे तौर पर माँस चमड़े का दीखता है, पर विश्लेषण से उसमें ढेरों प्रकार के रासायनिक पदार्थ मिलते हैं। इसी प्रकार साँस में प्रवेश करने वाली हवा मात्र स्पर्श तन्मात्रा वाली प्रकृति की हलचल नहीं है उसके भीतर कितने ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व भरे पड़े हैं—वे भौतिक भी हैं और चेतनात्मक भी। वायुभूत भौतिक पदार्थ आकाश की सुविस्तृत पोल में भरे पड़े हैं, इसे विज्ञानवेत्ता भली प्रकार जानते हैं। विज्ञानियों का कथन है कि चेतना जड़ शरीर में रहने वाली चेतन आत्मा की तरह है। वायु रूपी शरीर के भीतर एक चेतन शक्ति भरी पड़ी है—उसी को प्राण कहा गया है। हवा-हवा से सूक्ष्म-ईथर, ईथर से सूक्ष्म प्राण, प्राण से सूक्ष्म ब्रह्म इस प्रकार की पर्तों की कल्पना की जा सकती है। ऐसी पर्तों को जो पूरी तरह आपस में गुँथे और मिले हुए हैं। माँस में रक्त घुला रहता है और वायु में प्राण। सामान्यतया वे एकत्रित हैं, पर विशेष प्रयत्न द्वारा उन्हें पृथक किया जा सकता है

और जिस पदार्थ की आवश्यकता हो उसे हस्तगत किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार वायु तत्त्व में घुले हुए प्राण तत्त्व को अलग से खींचा जा सकता है और अपने प्राण में सम्मिलित करके अधिक शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

सामान्यतया साँस लेने से फेफड़ों में हवा पहुँचने और उससे रक्त को ऑक्सीजन मिलने तथा भीतर उत्पन्न हुई कार्बन डाइ-आक्साइड को बाहर निकालने भर का, शरीर-यात्रा का, आवश्यक प्रयोजन पूरा होता है। इस श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया को विशेष ढंग से, विशेष क्रम से किया जाने लगे, तो उससे भिन्न प्रकार की मंथन क्रिया आरंभ हो जाती है। मंथन द्वारा दूध से घी निकलता है। रति क्रिया में वीर्यपात का आधार भी यह मंथन ही होता है। अनेक वैज्ञानिक प्रयोजनों में यह क्रिया मंथन की जाती है और उससे अणुओं का केंद्रीकरण होने से छोटे रूप में अणु विस्फोट जैसी स्थिति उत्पन्न होती है और अनोखी उपलब्धियाँ मिलती हैं। दवाओं की घुटाई, पिसाई, घिसाई में भी प्रकारांतर से यह मंथन क्रिया ही संपन्न होती है और सामान्य-सी जड़ी बूटियाँ चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करती हैं।

यही मंथन क्रिया हंस—योग की प्राण-प्रक्रिया में विशिष्ट स्तर पर होती है। इससे उत्पन्न ऊर्जा अपने कई तरह के भौतिक और आत्मिक प्रयोजन पूरे करती है। आदिम सभ्यता के विकास काल में चकमक पत्थर के टुकड़े आपस में टकराकर आग उत्पन्न की जाती थी। पीछे लोहे, पत्थर के टकराव से भी चिनगारियाँ उत्पन्न की जाने लगीं। अरणि मंथन में—लकड़ियाँ आपस में रगड़ कर यज्ञ के लिए अग्नि उत्पन्न करना उस कर्मकांड का एक अंग रहा है। सूखे हुए बाँस अथवा अन्य कोई लकड़ियाँ तेज हवा के झोंकों से आपस में रगड़ने लगती हैं और उनसे उत्पन्न आग बढ़ते-बढ़ते दावानल बनकर बड़े-२ जंगलों को जलाकर राख कर देती है। सीसे की छड़ एबोनाइट से घिसने पर बिजली उत्पन्न होने की बात साइंस के छात्रों को स्कूली प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष दिखाई जाती है। यह सब घर्षण के चमत्कार हैं। ऐसी ही ऊर्जा श्वाँस क्रिया को मंथन क्रम में चलाने पर

उत्पन्न होती है और उससे शारीरिक सक्रियता एवं मानसिक तीक्ष्णता को प्रखर बनाने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है।

चलती रेल के पहियों में जब चिकनाई समाप्त हो जाती है अथवा अन्य किसी कारण घिसाव पड़ने लगता है तो वही उत्पन्न होने वाली गर्मी धुरे तक को गला देती है और दुर्घटना की स्थिति बन जाती है। आकाश में कभी-२ प्रचंड प्रकाश रेखा बनाते हुए 'तारे टूटते' दिखाई पड़ते हैं। ये तारे नहीं उसका पिंड होते हैं। अंतरिक्ष में छितराए हुए धातु, पाषाण जैसे छोटे-२ टुकड़े कभी-कभी पृथ्वी के वायुमंडल में घुस पड़ते हैं और हवा में टकराने पर जलकर खाक हो जाते हैं, उसी के जलने का तेज प्रकाश देखकर तारा टूटने का अनुमान लगाया जाता है। यह मात्र घर्षण क्रिया का चमत्कार है। प्राणायाम में इसी प्रक्रिया को अपने ढंग से दुहराया जाता है और प्रकाश उत्पन्न करते देखा जा सकता है।

दही मंथन में 'रई' को रस्सी के दो छोर पकड़कर उल्टा-सीधा घुमाया जाता है। रई घूमती है और उससे दूध में घुला हुआ घी उभर कर बाहर आ जाता है। बायें-दायें नासिका स्वरों से चलने वाले इड़ा-पिंगला विद्युत प्रवाहों का अमुक विधि से मंथन करने पर दूध बिलोने जैसी हलचल उत्पन्न होती है उससे कार्य चेतना में भरा हुआ ओजस् उभरकर ऊपर आता है। इसको विधिवत् उत्पन्न और धारण किया जा सके तो साधक को मनस्वी, तेजस्वी और ओजस्वी बनने का अवसर मिलता है। इस उपलब्धि को जीवन साहस एवं प्रखरता के रूप में कार्यान्वित होते देखा जा सकता है।

कई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से समर्थ और मानसिक दृष्टि से सुयोग्य होते हैं, पर साहस का अभाव होने से वे कोई महत्त्वपूर्ण कदम नहीं उठा पाते। शंका-कुशंकाओं से ग्रस्त रहते, आपत्तियों की, असफलताओं की संभावना उन्हें पग-पग पर डराती रहती हैं। थोड़ी-सी कठिनाई आने पर डरे घबराए दिखाई पड़ते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रगति के उपयुक्त अवसर सामने होने पर भी उन्हें गँवाते और गई-गुजरी स्थिति में आजीवन पड़े रहते हैं। इसके विपरीत साहसी व्यक्ति स्वास्थ्य, शिक्षा, साधना एवं उपयुक्त अवसर न होने पर भी दुस्साहस भरे कदम उठाते और आश्चर्यचकित करने वाली सफलताएँ

प्राप्त करते देखे जाते हैं। ऐसे ही दुस्साहसी व्यक्ति इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम अमर करते देखे जाते हैं। किसी भी क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण सफलताएँ पाने के लिए ऐसी ही साहसिक मनोभूमि का होना आवश्यक है। इस आंतरिक समर्थता को दूसरे शब्दों में 'प्राण' कहा जाता है। प्राणवान का अर्थ जीवित ही नहीं साहस भी होता है। इस उपलब्धि को स्वास्थ्य और शिक्षा से भी बढ़कर माना जा सकता है। प्राणायाम के प्रयोग इस उपलब्धि से साधक को लाभान्वित करते हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में पग-पग पर संघर्ष की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत कठिनाइयों को चीरते हुए ही प्रगति संभव होती है। नाव पानी को चीरते हुए आगे बढ़ती है। मकान बनाने का कार्य नींव खोदने से आरंभ होता है। खेत को बोने से पहले उसे जोतना पड़ता है। अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए जीव जिन पशु प्रवृत्तियों का अभ्यस्त होता है, उन्हें घटाए-हटाए बिना मानवी गरिमा के अनुरूप गुण-कर्म-स्वभाव उपार्जित नहीं किया जा सकता। आंतरिक अवाँछनीयताओं को हटाकर उस स्थान पर उत्कृष्टताओं की स्थापना करने के प्रयोग को साधना कहते हैं। यह साहसिकता के बिना किसी भी प्रकार संभव नहीं। बाहरी शत्रुओं से लड़ने के लिए जितना युद्ध कौशल चाहिए उतना ही शौर्य साहस अपने भीतर घुसे हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर जैसे आत्म-शत्रुओं से लड़ने और परास्त करने के लिए आवश्यक होता है। दुर्बल मनःस्थिति के लोग अपनी भीतरी कमजोरियों को जानते हैं, उन्हें हटाना चाहते हैं, पर साहस के अभाव में उनके साथ लड़ने का पराक्रम प्रदर्शित नहीं कर सकते। फलतः आत्म-सुधार एवं आत्म-निर्माण का प्रयोजन पूरा कर सकना उनसे बन ही नहीं पड़ता। अपने को असहाय अनुभव करते हैं और थककर प्रयत्न छोड़ बैठते हैं। प्राण ऊर्जा रूपी ईंधन के अभाव में वे मनोविकारों के समक्ष घुटने टेक देते हैं।

बाहरी युद्ध जीतने के भौतिक लाभ हैं, किंतु आंतरिक युद्ध में जीतने से तो विभूतियों का इतना बड़ा भंडार हाथ लगता है जिसे पाकर मनुष्य जीवन सच्चे अर्थों में सार्थक माना जा सकता है। साधना को संग्राम कहा गया है। 'साधना समर' शब्द का अध्यात्म

विज्ञान में बार-बार उल्लेख होता है। देवासुर संग्राम के अनेकानेक प्रसंग पौराणिक उपाख्यानों में आते हैं, यह अलंकारिक रूप मनुष्य जीवन के अंतरंग और बहिरंग क्षेत्रों में सदा रहने वाले संघर्षों का ही चित्रण है। दुर्गा सप्तशती और गीता की पृष्ठभूमि इसी संघर्ष के आधार पर खड़ी है। भगवती दुर्गा द्वारा असुरों का संहार और कृष्ण द्वारा अर्जुन के माध्यम से महाभारत का आयोजन प्रकारांतर से इसी तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि साधना समर के क्षेत्र में प्रवेश किए बिना उन अवरोधों से पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता जो मनुष्य को दयनीय दुर्दशा में डाले रहने के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी हैं।

अंडा तब फूटता है जब उसके भीतर बच्चे की अंतःचेतना उस परिधि को तोड़कर बाहर निकलने की चेष्टा करती है। प्रसव पीड़ा और प्रजनन की घड़ी तब आती है जब गर्भस्थ शिशु की चेष्टा उस बंधन को तोड़कर मुक्ति पाने की आतुर चेष्टा में संलग्न होती है। इन शिशुओं के संकल्प गिरे-मरे हों तो वे भीतर ही सड़-गलकर नष्ट हो जायेंगे। प्रगति के लिए पराक्रम और अवाँछनीयताओं के विरुद्ध संघर्ष का शौर्य साहस अपनाकर ही किसी को उत्कृष्ट स्तर तक बढ़ चलने का अवसर मिलता है। पराक्रम विहीन व्यक्ति को प्रति-पक्षी शक्तियाँ नष्ट भ्रष्ट करके रख देती हैं। पराक्रम गँवा बैठा जाए तो मक्खी, मच्छर, खटमल, पिस्सू, चूहे एवं शरीर में घुसे अदृश्य रोग कीटाणु तक अपने अस्तित्व के लिए खतरा बनकर खड़े हो जाएँगे। चोर उचक्के, गुंडे, ठग आततायी अपने ही इर्द-गिर्द भरे पड़े होते हैं और उन्हें जब दुर्बलता का पता चलता है तो अति उत्साहपूर्वक आक्रमण करने के लिए टूट पड़ते हैं। प्रगति के लिए न सही, आत्म-रक्षा का उद्देश्य बिना प्रचंड पराक्रम विकसित किए संभव नहीं हो सकता। पराक्रम प्राण का गुण है इसी को पुरुषार्थ भी कहते हैं। प्राणवान पुरुषार्थी को ही पुरुष कहा गया है। नर और नारी दोनों के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसलिए महापुरुष शब्द के अंतर्गत महान नारियों की भी गणना होती है। यदि ऐसा न होता, तो महान नारियों की उपेक्षा भावना ही समझी जाती अन्यथा महापुरुष की तरह महानारी का भी उल्लेख इतिहास पुराणों एवं शास्त्रों में रहा होता।

आत्मबल इसी आंतरिक ऊर्जा का नाम है जो मनुष्य को भौतिक और आत्मिक क्षेत्र में प्रबल पुरुषार्थ करने तथा आश्चर्य चकित करने वाली उपलब्धियाँ उपार्जित करने की आधारशिला सिद्ध होती है। इसी ऊर्जा को उपार्जित करना प्राणायाम करने का प्रधान उद्देश्य है। प्राणायाम की भिन्नता व क्रिया प्रधान नहीं, जितना कि वह संकल्प जो ऊर्जा-भंडार से प्राणशक्ति को खींचकर निकाल सकने में समर्थ होता है। कहना होगा कि इसके लिए पहले अपने स्थूल काय कलेवर को इस योग्य बनाना होगा कि वह इस दिव्य संपदा को धारण कर सके, क्षय न होने दे। आहार-विहार, यम-नियम आदि के पालन द्वारा व्यक्ति स्वयं को इस योग्य बनाता है कि प्राण की साधना कर सके। पूरक, कुंभक, रेचक के विस्तार में नहीं, मूल तत्त्व तो उस भावना प्रधान चिंतन में निहित है जो इन प्रयोगों के साथ करना अनिवार्य है। प्राण के शरीर में कितने व क्या स्वरूप हैं व किन्हें, किस प्रकार मस्तिष्क के विभिन्न ऊर्जा केंद्रों तक पहुँचाकर उन्हें समर्थ बनाया जाता है, इस रहस्य का उद्घाटन अगले अध्यायों में किया गया है।

अध्याय—३

प्राणायाम मनोबल वर्धक एक श्रेष्ठ उपचार पद्धति

प्राण शक्ति की महिमा सभी स्वीकार करते हैं। इसे जीवन और शरीर की क्रियाशीलता का मूल आधार, केंद्र-बिंदु कहा जा सकता है। यह विपुल विद्युत संपदा सारे अंतरिक्ष जगत में बिखरी पड़ी है। इसे कैसे धारण किया जाए व प्राण प्रयोग द्वारा कैसे स्वयं को और समर्थ बनाया जाए, इस विद्या से भली-भाँति अवगत न होने के कारण बहुसंख्य व्यक्ति भ्रम जंजाल में पड़े चिह्न पूजा भर कर लेते हैं। प्राण शक्ति की प्रक्रियाएँ मात्र श्वाँस-प्रश्वाँसजन्य ऊर्जा उत्पादन, रासायनिक परिवर्तनों तक ही सीमित नहीं हैं। इस सामर्थ्य को उतना ही शक्तिशाली माना जाना चाहिए जितना कि परमाणु की नाभिक विखंडन प्रक्रिया को भौतिकीविद् मानते हैं। प्राणशक्ति चेतन विद्युत है जो मस्तिष्कीय के प्रत्येक कोष को प्रभावित करती है एवं प्रक्रिया सही होने पर-सोद्देश्य ध्यान के साथ जुड़ जाने पर, न केवल विकारों का शमन करती है अपितु प्रतिभा, प्रखरता, स्मृति आदि को भी बढ़ाती, मनुष्य को क्षमता संपन्न बनाती है।

प्राण का अभाव ही जीवट की कमी, पल-पल में घबराना, तनाव से परेशान रहना, खिन्न-उद्विग्न बने रहकर अपनी खीझ-आवेश के रूप में दूसरों पर निकालना-इन लक्षणों के रूप में बहिरंग में व्यक्त होता है। कारण कुछ होता है चिकित्सा कहीं और की जाती है। प्राणशक्ति की गरिमा समझ ली जाए तो व्यक्ति इन मनोविकारों के लिए औषधियाँ तलाशता घूमता नहीं फिरेगा। यह शक्ति शरीर में संव्याप्त होकर व्यक्ति को ओजस्वी, मनःसंस्थान में उभरकर उसे मनस्वी व अंतःसमाविष्ट होकर तेजस्वी बनाती है। ऐसे व्यक्ति अपने आत्मतेज से समीपवर्ती वातावरण को प्रकाशित-प्रभावित करते हैं। जीवनीशक्ति

को अपराजेय सामर्थ्य, जिजीविषा, इच्छाशक्ति जो मनुष्य अर्जित करता है, वह प्राणधारण की ही प्रतिक्रिया है। प्राणशक्ति को जीवित रहने की सुदृढ़ और सुस्थिर इच्छाशक्ति के रूप में देखा जा सकता है। स्वस्थ सुदृढ़ और दीर्घ जीवन का लाभ शरीर को इसी आधार पर मिलता है। मनस्वी, ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व ही विभिन्न क्षेत्रों में सफलताएँ प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत दीनहीन, भयभीत, शंकाशील, निराश, खिन्न, हतप्रभ व्यक्ति अपने इसी दोष के कारण उपेक्षित, तिरस्कृत एवं उपहासास्पद बने रहते हैं। उत्साह के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े रहने वाली कर्मनिष्ठा का जहाँ अभाव होगा वहाँ अवनति और अवगति के अतिरिक्त और कुछ रहेगा ही नहीं। साहस बाजी मारता है। बहादुरों के गले में ही अनादि काल से विजय बैजयंती पहनाई जाती रही है और अनंत काल तक यही क्रम चलता रहेगा।

शौर्य साहस को श्रम, निष्ठा, तत्परता, तन्मयता और अदम्य उत्साह के रूप में देखा जाता है। कायर और भयभीत संकोची और हतप्रभ व्यक्तियों से कुछ करते-धरते नहीं बनता। जो करते हैं वह आधा-अधूरा भोंड़ा और अव्यवस्थित होता है। पेट्रोल के अभाव में मोटर खच-खच करके रह जाती है। तेल के अभाव में दीपक टिम-टिम जलता बुझता दीखता है। साहस हीन व्यक्ति किसी तरह अपने सामने पड़े कार्य को रोता-झींकता पूरा करने का कुछ प्रयत्न करता है, पर जीवट के अभाव में वह सदा आधा-अधूरा और काना-कुबड़ा ही बनकर रह जाता है। उसका स्तर इतना घटिया होता है कि उपलब्ध परिणाम उपहासास्पद एवं असंतोषजनक बनकर रह जाता है।

डाकू से लेकर सिद्ध पुरुषों तक, समाज-सेवियों से लेकर राज-नेताओं तक हर किसी को अपने प्रयास में सफल होने के लिए जीवट की आवश्यकता पड़ती है। इसी की व्याख्या अलभ्य उत्साह, अविचल धैर्य और मर मिटने के कटिबद्ध शौर्य के रूप में देखी जाती है। शरीर प्राण का विपुल भंडार है। सिंह जैसे पशु और गरुड़ जैसे पक्षी यों हिंसक होने के कारण मानवी गरिमा से बहुत पिछड़े हुए हैं तो भी उन्हें प्राणवान कह सकते हैं। शौर्य साहस एवं पुरुषार्थ के

कारण ही वे अपने वर्ग के अधिपति बने हुए हैं। यों शरीर बल की दृष्टि से उनकी तुलना में अन्य कई प्राणी अधिक समर्थ स्थिति के भी मौजूद हैं।

पहलवानों में देखी जाने वाली बलिष्ठता, कलाकारों में पाई जाने वाली फुर्ती और सैनिकों जैसी चुश्ती ही मात्र आरोग्य की निशानी नहीं है इसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है जीवनी शक्ति की प्रचुरता जिसे जीवट भी कह सकते हैं। रक्त अशुद्ध होने या कोई भीतरी अवयव क्षीण हो जाने पर भी बस जीवट के आधार पर कोई रुग्ण दीखने वाला मनुष्य स्वस्थ लोगों की तुलना में अधिक सक्रिय रह सकता है और अधिक महत्त्वपूर्ण काम निपटा सकता है। इसे 'जिजीविषा' का नाम भी दिया जा सकता है। इसके सहारे मौत से जूझा जा सकता है और अस्वस्थता के भार से दबे होने पर भी प्रबल पुरुषार्थियों जैसे प्रखर कर्तृत्व संपन्न करते रहा जा सकता है। भीष्म के शर शैया पर पड़े रहने पर भी उत्तरायण सूर्य आने तक की प्रतीक्षा में जीवित रहना, आद्य शंकराचार्य के भयंकर फोड़े से संत्रस्त रहने पर भी आश्चर्यजनक सक्रियता का प्रमाण देना जैसे असंख्य प्रमाण ऐसे मिलते हैं, जिसमें गाँधी जी दुर्बल और राजेंद्र बाबू जैसे रुग्ण मनुष्यों ने पूर्ण स्वस्थ मनुष्यों से भी आगे बढ़कर ऐसे काम करके दिखाए कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसने इस शक्ति को जितनी अधिक मात्रा में धारण करने, पचाने व उसे सही दिशा में प्रयुक्त करने की विद्या सीखी वह उतना ही मनोबल संपन्न-स्वस्थ दीर्घायु होता चला गया। यह तो एक विडंबना ही है कि या तो मनुष्य प्राण धारण की सही विधि से अपरिचित होने के कारण लाभ उठा पाने में असमर्थ रहते हैं, रोगी होते कष्ट पाते हैं अथवा मात्र नाक से साँस खींचने व छोड़ने को ही प्राणायाम मान बैठते हैं। यदि विधिपूर्वक संपन्न की जाए तो यह विद्या अवसाद, आवेश, आत्म हीनता सनक-उन्माद, अपराधी वृत्ति, अल्पमंदता जैसे मनोविकारों के उपचारों में भी प्रयुक्त हो सकती है। दुर्व्यसनों को भी लोग-बाग इतने सहज रूप में स्वीकार लेते हैं मानों वह प्रकृति का उनके लिए रचा विधान हो। इनसे मुक्ति पाने के लिए जिस प्रबल इच्छाशक्ति की

आवश्यकता है, इसका अर्जन प्राणायाम के प्रयोगों द्वारा बड़ी सरलतापूर्वक किया जा सकता है। प्राणायाम मात्र फेफड़ों का व्यायाम ही नहीं, इससे भी ऊँची स्थिति है। 'आयाम' की व्याख्या की जाए तो कहा जा सकता है कि यह फैलाव की वितरण की, प्राण को क्रियाशील बनाने की प्रक्रिया है। दुर्व्यसनों एवं मनोविकारों की सूक्ष्म रूप में उपस्थिति को देखते हुए उपचार के लिए इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय हो भी नहीं सकता। आज अपच और कुपोषण के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों का इन दिनों जितना जोर है उससे कहीं अधिक विपत्ति, तनाव जन्य रोगों की है। आरोग्य क्षेत्र भी अब क्रमशः दो विभागों में विभक्त होता है। एक पिछड़ा दूसरा विकसित है। पिछड़े लोग जहाँ अभावजन्य कठिनाइयों से संबंधित रोगों के शिकार होते हैं वहाँ विकसित लोग शिक्षा एवं संपन्नता का दुरुपयोग करने के कारण मानसिक विक्षोभ से, तनाव से ग्रसित होते चले जाते हैं। नशेबाजी, विलासिता, आपाधापी, शेखीखोरी और अनुदारता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ एक प्रकार से सरल जीवन के साथ विद्रोह है। उच्छृंखलता सो उच्छृंखलता। एक के बाद दूसरी का तारतम्य जुड़ा रहता है और पतनोन्मुखी आदतें न केवल व्यवहार पर, वरन् चिंतन पर भी आच्छादित होती चली जाती हैं। फलस्वरूप शरीर और मन दोनों की शक्तियों का अंधाधुंध अपव्यय होता है और दोनों क्षेत्रों पर रहने वाली उत्तेजना अंततः चित्रविचित्र रोगों के रूप में फूटती हैं।

यह व्यथा विकसितों को, संपन्न एवं शिक्षितों को, अधिक घेरती है। इस तरह पिछड़े लोग अपने ढंग से और प्रगतिशील अपने ढंग से रोगों से ग्रसित होते चले जा रहे हैं। आर्थिक और बौद्धिक आधार पर पनपते हुए वर्ण भेद ने अब रुग्णता के क्षेत्र में अपनी विभाजन रेखा खींचनी आरंभ कर दी है। तनाव समृद्धों के हिस्से में आया है। दुर्भाग्य है, उसकी शाखा-प्रशाखाएँ और जटिलताएँ अभावजन्य रोगों से कहीं अधिक हैं। इस प्रकार अपेक्षाकृत अधिक घाटे में तथाकथित समृद्ध लोगों को ही अधिक रहना पड़ रहा है।

जीवन-यापन की विकृत शैली अपनाकर ही इन दिनों नए किस्म की ऐसी व्यथाओं से घिरते जा रहे हैं जो न अभावजन्य हैं और न विषाणुओं का आक्रमण पिछले दिनों वैज्ञानिक, बौद्धिक और

आर्थिक प्रगति उतनी नहीं थी जितनी इन दिनों है। इतने पर भी पूर्वज हलकी-फुलकी जिंदगी जीने के अभ्यस्त थे और चिंताओं, भ्रांतियों से कुत्साओं, कुंठाओं से उतने नहीं घिरे रहते थे, जितने कि आज के तथाकथित 'सभ्य' मनुष्य। विकास की एक सीढ़ी यह भी मानी जा सकती है कि मनुष्य अनुदारता और उच्छृंखलता की दिशा में तेजी से बढ़ता, भागता चला जा रहा है। नई परिस्थितियों में नए किस्म के ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं जिनका प्रस्तुत चिकित्सा ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता और चिकित्सकों को अनुमान के आधार पर इलाज का तीर तुक्का बिठाना पड़ता है।

प्रतिपादन का विषय किसी चिकित्सा पद्धति में उलझना नहीं, वरन् यह है कि समग्र आरोग्य के लिए मनः तत्त्वों को आधार माना जाए और उसी के सहारे मानसिक तथा शारीरिक व्याधियों से छुटकारा पाने की बात सोची जाए। यह इसलिए कहा जा रहा है कि चेतना स्वतंत्र ही नहीं समर्थ भी है। उसी के नियंत्रण में पाँच तत्त्वों से बने काय कलेवर का सारा ढाँचा गतिशील रहता है। मस्तिष्क को शरीर का अवयव मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, किंतु मनः तत्त्व एवं मस्तिष्क को एक मान बैठना गलत है।

चेतना का काया पर आधिपत्य है। उसके विलग होते ही अच्छी-खासी काया सड़ने लगती है। मस्तिष्क को चेतना का प्रधान उपकरण माना जाता है। भौतिक मान सकता है पर यह मानना गलत है कि मस्तिष्क ही चेतना का आदि और अंत है। शास्त्र मानवी सत्ता को पंचभौतिक मानता है इसलिए उसके आरोग्य संबंधी प्रतिपादन एवं उपचार भी उसी स्तर के हैं। अध्यात्म शास्त्र ने जीव सत्ता को चेतना प्रधान माना है साथ ही इसी क्षेत्र की विकृतियों को शारीरिक तथा मस्तिष्कीय व्याधियों का कारण माना है। ऐसी दशा में योगाभ्यास के आधार पर अपनाया गया मानसोपचार ठीक उसी तरह तर्क संगत बैठता है, जैसा कि शरीर की शक्तियों द्वारा प्रस्तुत औषधोपचार।

बात यहाँ आकर अड़ती है कि मानवी सत्ता को जो पदार्थ जन्य मानकर उसकी शारीरिक और मानसिक व्यथाओं को दूर करने में रासायनिक हेर-फेर करने वाली उपचार पद्धति को पर्याप्त माना

जाय ? अथवा जीवसत्ता पर चेतना का अधिकार स्वीकार करते हुए मानसोपचार की चिर पुरातन प्राणायाम वाली योगोपचार पद्धति को प्रमुखता दी जाए ?

अच्छा तो यही होता कि योगाभ्यास की मानसोपचार पद्धति को शारीरिक और मानसिक व्यथाओं में प्राचीनकाल की तरह प्रयोग किया जाता और दुहरा लाभ उठाया जाता, पर यदि ऐसा इन दिनों संभव न हो सके तो शारीरिक कष्टों में औषधि चिकित्सा और मनोरोगों में योग चिकित्सा का उपचार तो हर दृष्टि से उपयुक्त हो सकता है। इन दिनों औषधि के लिए लोक मानस में गहरा अंधविश्वासी आग्रह है। दूसरी ओर योग चिकित्सा भी परिष्कृत रूप में विकसित नहीं हो पाई है। इस मध्यांतर अवधि में सर्वश्रेष्ठ तरीका यही अपनाया जा सकता है कि शरीरगत व्यथाओं के निवारण हेतु सर्वोपलब्ध वनौषधि उपचार पद्धति प्रचलित करें और मनोरोगों के क्षेत्र में प्राणायाम की मानसोपचार पद्धति को अपनाकर योगाभ्यास द्वारा सँभालने का प्रयत्न किया जाए।

❑❑

अध्याय—४

प्राणायाम चिकित्सा से मनोविकारों का उपचार

श्वसन प्रक्रिया का मन से बड़ा गहरा संबंध है, 'मन' या माइंड एक ऐसा अविज्ञात क्षेत्र है जिसके विषय में बहुमूल्य उपकरण उपलब्ध होते हुए भी वैज्ञानिक अभी बहुत कम जान पाए हैं। रोगी की मनःस्थिति का विश्लेषण कर सकने में असफल चिकित्सक मनोविकारों की जैसे-तैसे चिकित्सा करते रहते व चिन्हपूजा करते रहते हैं। इन मनोविकारों के उपचार हेतु प्राणायाम चिकित्सा से श्रेष्ठ कोई पद्धति नहीं हो सकती। स्नायुमंडल व ज्ञान तंतुओं को सीधे प्रवाहित कर चिंतन शक्ति द्वारा स्वनिर्देश भेजकर एवं रसोत्पादक ग्रंथियों द्वारा विचारणा व भावना को प्रवाहित कर साधारण श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया को किस प्रकार चमत्कारी चिकित्सा व्यवस्था में बदला जा सकता है, यह जानना सभी के लिए अनिवार्य है। प्रस्तुत पुस्तक का मूल विषय ही मनोबल की शक्ति बढ़ाकर प्राण प्रयोगों के द्वारा मनोविकारों का निवारण है। श्वसन प्रक्रिया के रक्त शोधन, शरीर रोग निवारण पक्षों को तो निर्विवाद मानकर बाद में संक्षिप्त विवेचन हेतु छोड़ दिया गया है। मूल समस्या मनोविकारों की है, जिसका आज बाहुल्य है व उपचार दूर-दूर तक नहीं नजर आता।

मनः संस्थान की विकृति ही रोगों का मूल कारण

चिंता, भय, आशंका, असंतोष, ईर्ष्या, द्वेष, उद्वेग, आत्महीनता, अपराधी वृत्ति का ही यदि मन पर नियंत्रण हो तो मनःसंस्थान का सारा संतुलन ही गड़बड़ा जाएगा व उसका प्रभाव सारे शरीर संस्थान पर अनेक-शारीरिक व्याधियों के रूप में दिखाई देगा।

सोचने का तरीका विकृत हो जाने पर सामान्य परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल दिखाई पड़ती हैं और उनसे डरा, घबराया हुआ व्यक्ति अपना संतुलन गँवा बैठता है। झाड़ी का भूत बन जाना, रस्सी का

सर्प दिखाई पड़ना, भ्रम की प्रतिक्रिया को प्रत्यक्ष कर देता है। प्रतिकूलताएँ वस्तुतः उतनी होती नहीं जितनी कि समझी जाती हैं। मनुष्य हर स्थिति में गुजारा कर सकने योग्य शरीर और हर परिस्थिति में मुस्कराते रह सकने योग्य मन लेकर जन्मा है। इनकी मूल-संरचना का कोई दोष नहीं है। शरीर 'व्याधि' से और मन 'आधि' से यदि ग्रसित होता है तो उन विपत्तियों का कारण अपनी ही भूल होती है। असंयम हमें रुग्ण बनाता है और असंतुलन से हम अर्धविक्षिप्त दिखाई पड़ते हैं।

शरीर के साथ अनीति बरती जाए तो वह देर सबेर में रुग्ण होकर रहेगा, कमजोरी और रोती कराहती स्थिति में घसीट ले जावेगी। मस्तिष्क के साथ यदि अनीति बरती गई है, उसे कुसंस्कारी चिंतन का अभ्यासी बनाया गया है, तो या तो संकटपूर्ण परिस्थिति पैदा कर लेगा या फिर सामान्य स्थिति में ही विपरीतता का आरोपण करके विक्षुब्ध रहने लगेगा। इस विक्षुब्धता को ही मानसिक रुग्णता कहा जाता है।

इन दिनों शारीरिक रोग भी बेतरह बढ़ रहे हैं। नई-नई किस्म के नई-नई आकृति-प्रकृति के रोग हर साल उठ खड़े होते हैं और डॉक्टर उनका अता-पता चलाने एवं उपचार खोजने में नित नई परेशानी अनुभव करते हैं। पुराने जमाने के परिचित रोगों की भी अब इतनी अधिक शाखा-प्रशाखाएँ फूट पड़ी हैं कि उन्हें नए रोग की संज्ञा देने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। मानसिक रोगों की बढ़ोत्तरी इससे भी अधिक तेज और भयंकर है। जिस तरह पूर्ण स्वस्थ कहे जा सकने योग्य शरीर कठिनाई से ही ढूँढ़े मिलेंगे, उसी तरह ऐसे मनुष्य कदाचित ही मिलेंगे जिनका मस्तिष्क मानसिक रोगों के कारण विकृत जर्जर बना हुआ न हो। आज की बढ़ी हुई अनैतिकता एवं असामाजिकता ऐसी समस्याएँ उत्पन्न करती हैं जिससे सामान्य मनोबल का व्यक्ति सहज ही विक्षुब्ध हो उठता है। घटा गिरा मनोबल भी इतना अपंग हो चला है कि सीधे-साधे, सरल स्वाभाविक मनुष्य जीवन के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई अनुकूलता, प्रतिकूलताओं को विपत्ति मान बैठता है और रो-रोकर जमीन, आसमान को सिर पर उठा लेता है।

परिस्थितियों के साथ चिंतन का उपयुक्त तालमेल न बिठा सकने के कारण अब असंख्य व्यक्ति मानसिक रोगों से ग्रसित होते चले जा रहे हैं। यह अवाँछनीयता महामारी की तरह, आँधी-तूफान की तरह बढ़ रही है और लगता है कि स्वस्थ और संतुलित मस्तिष्क वाले व्यक्ति अगले दिनों ढूँढ़ पाना कठिन हो जाएगा।

शरीर की तुलना में मन का मूल्य हजारों गुना अधिक है। उसी प्रकार शरीर—रोगों की तुलना में मानसिक रोगों की क्षति अत्यधिक है। शरीर रोगी रहे किंतु मस्तिष्क स्वस्थ हो तो मनुष्य अनेक मानसिक पुरुषार्थ कर सकता है, किंतु यदि मस्तिष्क विकृत हो जाए तो शरीर के पूर्ण स्वस्थ होने पर भी सब कुछ निरर्थक बन जाएगा।

इन दिनों मानसिक रोगों की बाढ़ जिस तूफानी गति से आ रही है, दावानल की तरह बढ़ती, धधकती चली जा रही है उसे देखते हुए लगता है मनुष्य जीवन से उसका सहज सुलभ आनंद छिनने जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है। सनकी, बहमी, शेखचिल्ली, उद्विग्न, क्रुद्ध, रुष्ट, असंतुष्ट, आशंकाग्रस्त, चिंतित, निराश, भयभीत, उदासीन व्यक्ति क्रमशः अपने लिए भार बनते चले जाते हैं। उनके मस्तिष्क में ऐसे 'चक्रवात' उठते रहते हैं जो सोचने की स्वस्थ शैली को बेतरह तोड़-मरोड़कर रख देते हैं। टूटी हुई मनःस्थिति में तथ्य को समझना संभव नहीं रहता कुछ के बदले कुछ समझना और कुछ करने के स्थान पर कुछ करने लगना ऐसी विपत्ति है जिसके कारण मनुष्य अर्धविक्षिप्त स्थिति में चला जाता है, अपने आपके लिए तथा दूसरों के लिए एक समस्या बन जाता है। बढ़ते हुए मनोरोगों से क्रमशः सारा मनुष्य समाज जकड़ता चला जा रहा है। संतोष इतना ही है कि विपत्ति पूर्ण उन्माद की स्थिति तक नहीं पहुँची है। मस्तिष्क के छोटे-२ हिस्सों पर ही उसने आधिपत्य जमाया है और लोग अर्धविक्षिप्त जैसे ही दिखाई पड़ते हैं। जो सही नहीं सोच सकता, सही निष्कर्ष नहीं निकाल सकता और साधनों का उपयोग करने एवं परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में समर्थ नहीं है उसे मानसिक दृष्टि से रोगी कहा जाएगा। ऐसे व्यक्ति दर्द से कराहते भले ही न हों पर उनकी जीवन संपदा एक प्रकार से कूड़ा करकट ही बन जाती है। न वे स्वयं चैन से बैठते हैं न दूसरों

को बैठने देते हैं। इस प्रकार मनोविकारों—रोगों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। स्वस्थ्य दीख रहा व्यक्ति मन से भी स्वस्थ होगा, यह सुनिश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता।

मनोरोगों का मोटा विभाजन

आधुनिक मनःशास्त्र वेत्ता मनोरोगों को मूलतः दो बड़े विभागों में बाँटते हैं—ऑर्गेनिक (स्थूल—शरीर संबंधी) व फैंक्शनल (सूक्ष्म—क्रिया संबंधी)। ऑर्गेनिक रोग वे हैं जिनके साथ मस्तिष्क या शरीर में कोई ऐसी व्याधि पाई जाती है जो उस मनोरोग का कारण मानी जा सके—उदाहरणार्थ कैंसर, तेज ज्वर, मस्तिष्क की रक्तवाहिनियों के रोग (सी. वी. ए.) अथवा रक्त के घटकों में परिवर्तन तथा डायविटीज, ऐसिडोसिस आदि। इसके विपरीत फैंक्शनल मनोरोग वे हैं जिनका कोई प्रत्यक्ष कारण शरीर में नजर नहीं आता। इन्हें ही वस्तुतः मनोविज्ञान में प्रमुखता दी जाती है व 'साइकिएट्री' का विषय माना जाता है। 'ऑर्गेनिक' का अनुपात जहाँ २ से ५ प्रतिशत होता है, वहाँ मनोविकारों (फैंक्शनल मनोरोगों) का ६५ प्रतिशत।

वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार मनोविकार 'माइनर' व 'मेजर' दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं।

(अ) माइनर या लघु मनोरोग—वे हैं जिनमें पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित नहीं होता। उसका कुछ ही भाग असामान्य या व्याधिग्रस्त कहा जा सकता है। इन्हें व्यक्तित्व की व्याधियों (पर्सनालिटी डिसआर्डर्स) एवं विक्षिप्तता (न्यूरोसिस) दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

समाज विरोधी मनोवृत्ति व व्यवहार, नशीले द्रव्यों की लत, आक्रामक प्रवृत्ति, कामविकृतियाँ तथा हमेशा दूसरों से अलग रहने की प्रवृत्ति इसी व्यक्तित्व व्याधि वाले समूह में आती हैं ये व्यक्ति स्वयं किसी से अपनी पटरी बिठा नहीं पाते तथा अपने कृत्यों के कारण कई बार जेल की हवा भी खाते हैं।

न्यूरोसिस का रोगी स्वयं को रोगी मानता है साथ ही इसका बाह्य परिवेश-व्यवहार जगत से संबंध भी नहीं टूटता। यही इस

प्रकार के रोगी का सबसे बड़ा लक्षण है। चिंता, हिस्टीरिया, भय, सनक व अवसाद इसी न्यूरोसिस के उपविभाजन हैं।

(ब) मेजर या वृहद् मनोरोग—वह समूह है जिसमें रोगी का सारा व्यक्तित्व ही रोग ग्रस्त हो जाता है और ऐसा व्यक्ति बहिरंग से कतई तालमेल नहीं बिठा पाता। ऐसे रोगी आम बोल-चाल में पागल ही माने जाते हैं, स्वयं को इन्हें अपने रोग का भान नहीं होता व हमेशा स्वयं को सही मानते हैं। इन्हें भी दो वर्ग— (१) अफेविटव डिसआर्डर्स (भावनात्मक विक्षोभ) एवं (२) स्कीजोफ्रेनिया (वैचारिक विकृति एवं विक्षोभ) दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। अफेक्टिव या भावनात्मक विक्षोभ में भी 'मेनिया' अर्थात् बिना किसी कारण के अत्यधिक प्रसन्न रहना, बिना बात हँसना-हँसाना, समय-समय पर उत्तेजित हो जाना एवं 'डिप्रेशन' अर्थात् अकारण उदासी, निराशा, सो नहीं पाना, आत्महत्या की प्रवृत्ति ये दो मूल विभाजन हैं।

स्कीजोफ्रेनिया एक बहुत बड़ा रोग समूह है जिसकी कम से कम २० प्रजातियाँ हैं। सिंपल, हेवीफ्रीनिक, केटाटोनिक, पैरानॉयड ये ४ मुख्य उपविभाजन हैं। सभी में एक प्रधान लक्षण है, विचार-प्रवाह का क्रमबद्ध न होकर बार-बार भटकना, छोटी सी बात पर भावनात्मक दृष्टि से असंतुलित हो जाना। आत्महत्या की प्रवृत्ति एवं पागलपन के पूरे लक्षण प्रकट हो जाना यह विकास क्रम की दृष्टि से चरमावस्था है। इस रोग के रोगी सर्वाधिक होते हैं व बहुधा अपने हल्के स्वरूप में पहचान में भी नहीं आते।

यह ढाँचा पाश्चात्य दृष्टिकोण से मनोरोगों का हुआ। तनाव-निवारक औषधियाँ, संज्ञाहर इंजेक्शंस, बिजली के झटके (इ. सी. टी.), लिथिइम तथा लोबेक्टॉमी—ल्यूकॉटामी जैसे उपचारों के बाद भी न इनके कारण समझ में आ पाए हैं, न उपचार ही हाथ लग पाया है। इस वर्गीकरण का आधार भी वैज्ञानिकों द्वारा कल्पित स्थान विशेष के रोगों का होना अथवा स्नायु-रसस्रावों की न्यूनाधिकता है। इससे सरल विश्लेषण उस व्यावहारिकृत वर्गीकरण में किया जा सकता है जिसे आप्त पुरुषों ने भी मान्यता दी है व आयुर्विज्ञान के वैद्यों ने भी। यह वर्गीकरण मनोविकारों के लक्षणों पर आधारित है।

मनोविकारों के ६ मुख्य प्रकार

(१) आवेशभरी मनःस्थिति, असंतुलन।

(२) सनक व भ्रम, बेवजह की कल्पनाएँ, अकारण भय।

(३) अवसाद, निराशा, भय, उदासी, कायरता।

(४) आतुरता, जल्दबाजी, अधैर्य की स्थिति, सतत् तनाव।

(५) अपराधी मनोवृत्ति, आक्रामक चिंतन, कामुकता।

(६) अल्पमंदता।

इन ६ विभाजनों के अनुसार ही मस्तिष्क स्थित ६ शक्ति केंद्रों को जगाकर उपचार का प्रावधान प्राणायाम चिकित्सा में किया गया है। पाश्चात्य विभाजन को समझना सबके लिए सरल नहीं, लेकिन उपरोक्त लक्षणों के आधार पर चिकित्सा करना या परामर्श दे सकना सबके लिए संभव हो सकता है। शक्ति केंद्रों की चर्चा व उपचार प्रक्रिया के विवरण के पूर्व इन मोटे वर्गों का संक्षिप्त विवेचन अनिवार्य है।

(१) आवेश भरी मनःस्थिति—यह परिस्थितियों से तालमेल न बिठा पाने व अपने क्रोध रूपी आवेग पर नियंत्रण के अभाव के कारण उत्पन्न होती है। मस्तिष्कीय संरचना कुछ ऐसी है कि जिस भी आवेग का उसमें बार-बार उदय हो, उसके संस्कार गहरे होते जाते हैं और आवेग स्वभाव का अंग बनता जाता है। एक ही बाधक विषय-वस्तु के प्रति दो लोगों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है, एक क्रोध से लाल-पीला होकर मरने-मारने पर उतारू हो जाएगा, दूसरा उस बाधा के निवारण का गंभीर प्रयास प्रारंभ कर देगा। यह भिन्नता मस्तिष्क में पड़ गए संस्कारों की ही है। असफलता प्राप्त होने पर जब क्रुद्ध होने की ही प्रवृत्ति दृढ़ हो जाती है तो फिर यह आवेश उस बाधक—तत्त्व के प्रति ही सीमाबद्ध नहीं रहता, अपितु संपर्क में आने वाले लोगों से अकारण क्रुद्ध व्यवहार का प्रेरक बन बैठता है।

मन की जटिलताएँ भी मनुष्य की इस आवेश ग्रस्त मनःस्थिति का कारण होती है। मनुष्य अपनी मानसिक जटिलताओं में उलझा-उद्विग्न बना रहता है और यह उद्वेग जिस-तिस पर क्रोध बनकर बरस पड़ता है।

इस प्रकार मोटे तौर पर आवेश के तीन वर्ग गिनाए जा सकते हैं—

१. कामना पूर्ति में अवरोधक-बाधक विषय के प्रति आवेश, जो बाधक को हानि पहुँचाने की भावना से जुड़ा रहता है।

२. असफलता से क्रुद्ध मनःस्थिति से संपर्क में आए अन्य व्यक्तियों पर कारण वश या अकारण ही व्यक्त होने वाला आवेश।

३. लंबे अभ्यास से व्यसन सा बन चुका आवेश जो स्वभाव का स्थाई अंग बन जाता है।

आवेश मन को उत्तेजित और खिंची हुई अवस्था में रख देता है, इससे शरीर में भी तनाव आ जाता है, रक्त-संचालन तीव्र हो उठता है और अनावश्यक गर्मी शरीर में आ जाती है। विचार शक्ति शिथिल हो जाती है। तीव्र रक्त-संचालन से चेहरा तमतमा उठता है, और फड़कने लगता है, आँखें लाल हो उठती हैं। भीतरी अवयवों पर भी ऐसा ही अनिष्ट और दूषित प्रभाव पड़ता है, हृदय-स्पंदन तेज हो जाता है, आँतों का पानी गर्मी से सूखने लगता है। पाचन-क्रिया शिथिल पड़ जाती है, रक्त से एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है जो जीवनी शक्ति को क्षीण कर देता है। एड्रीनल ग्रंथियों से क्रोध की स्थिति में जो हारमोन्स स्त्रवित होते हैं, वे रक्त के साथ मिलकर जिगर में पहुँचते हैं और वहाँ उसे ग्लाइकोजन को शर्करा में बदल देते हैं। इसके अतिरिक्त शक्कर शरीर पर विघातक प्रभाव डालती है।

ऐसा मनुष्य दूसरे के समर्थ शक्तिशाली होने पर जब अपने मंतव्य में सफल नहीं हो पाता, तो स्वयं अपने ऊपर वैसी ही क्रिया करने लगता है, जो वह दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए करने की सोच रहा था। अपना सिर फोड़ने लगना, बाल नोंचने लगना, अंग-भंग और आत्महत्या तक कर बैठना ऐसी ही मनःस्थिति के परिणाम होते हैं।

उत्तेजित प्रकृति के पागल हर समय बेचैन रहते हैं। उत्तेजनाग्रस्त, अस्थिर, चंचल उन्हें पाया जाता है कुछ न कुछ उठक-पटक करते रहते हैं, बड़बड़ाते हैं, दूसरों के कामों में हस्तक्षेप

करते हैं और लड़ने-मरने पर उतारू रहते हैं। आत्म प्रशंसा, दर्प प्रदर्शन धमकी, दूसरों का तिरस्कार जैसी हरकतों में उन्हें संलग्न देखा जा सकता।

यह मनोविकार तनाव की चरम सीमा कहा जा सकता है जो व्यवहार में भी प्रतिक्षण परिलक्षित होता रहता है। प्रत्यक्षतः तो ऐसे व्यक्ति रोगी नहीं कहे जाते, पर आध्यात्मिक परिभाषा के अनुसार अनियंत्रित आवेश को भी मनोविकार मानकर उसकी चिकित्सा की जाती है।

(२) **सनक व भ्रम**—सनक का तकनीकी शब्द है 'ऑब्सेशन' अर्थात् बार-बार मन में एक ही विचार, कल्पना या दृश्य का आते रहना व चाहते हुए भी रोगी का अपनी इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण न हो पाना।

सनक के प्रभाव में विवश होकर जो कृत्य किए जाते हैं, उन्हें 'कंपल्शन' कहा जाता है। न चाहते हुए भी वे विचार जिन्हें ऐसे व्यक्ति मन से हटाना चाहते हैं, सनक आते व उन पर हावी होते रहते हैं भ्रम भी इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ तो वैचारिक होते हैं (डिल्युजन) और कुछ बोध परक (हैल्युसिनेशन)। डिल्युजन वस्तुतः एक ऐसी कल्पना है जो रोगी जानता है कि गलत है, फिर भी उस पर हावी रहती है। बहुधा ये भयपरक होते हैं। भय किसी भी वस्तु या व्यक्ति का हो सकता है। हैल्युसिनेशन का अर्थ है, मनःस्थिति के विकृत होने से ऐसी आवाजों, दृश्यों, गंधों आदि का बोध होना जो कि वास्तव में विद्यमान नहीं है। भ्रमपरक ये सभी बोध भय से ही संबंधित होते हैं। अपने आपको मारे जाने की काल्पनिक धमकियाँ सुनकर ये व्यक्ति सतत् घबराते व आत्मरक्षा हेतु आक्रामक होते भी देखे गए हैं।

(३) **अवसाद**—निराशा, भय उदासी, कायरता इसी वर्ग में आते हैं। उदासी स्वाभाविक नहीं, हमेशा, अप्राकृतिक ही होती है और धीरे-धीरे ऐसे व्यक्ति व्याधि के स्तर पर पहुँचकर मनोरोग ग्रस्त हो जाते हैं। यदि सामान्य सी बात पर भी कोई व्यक्ति घोर निराशा में

डूब जाए, कारण हट जाने पर भी उदास बना रहे तो अवसाद ग्रस्त कहा जा सकता है।

निराशा एक मानसिक रोग है। यह मनुष्य की गतिशीलता को अस्वस्थ बना देता है। निराशावादी व्यक्ति प्रगति की भावना और उन्नति की जिज्ञासा से उदासीन हो जाता है। प्रगति अथवा उन्नति की बात मन में आते ही उसे ऐसा आभास होने लगता है, मानो वह अपने ऊपर कोई विपत्ति लाने की बात सोच रहा है। काम में प्रवृत्ति लाने से पूर्व ही उसे आपत्तियाँ, कठिनाइयाँ और असफलता दिखलाई देने लगती है। उसका साहस मर जाता है। अपने को जहाँ का तहाँ पड़ा असुरक्षित अनुभव करता है। एक निराशावादी और मृत व्यक्ति में कोई विशेष अंतर नहीं होता। एक स्थित शव की तरह होता है, एक चलती-फिरती लाश की तरह।

संसार में जो मनुष्य अपने को अकेला और असहाय अनुभव करता है, निश्चित रूप से वह निराशा का रोगी होता है। निराश मनुष्य के हृदय में यह मिथ्या धारणा घर कर लेती है कि संसार में उसका कोई अपना नहीं है। उनके सारे साथी, मित्र और हितैषीजन उसे छोड़कर चले गए हैं। ऐसा हो चाहे न हो पर निराशग्रस्त व्यक्ति को अपने मलीन मनोभावों के कारण ऐसा ही अनुभव होता है। ऐसा ही नहीं, उसकी भावना के अनुसार एक दिन उसके संगी साथी और मित्र-हितैषी उसे छोड़ भी देते हैं। निराश और निरुत्साही मनुष्य का साथ किसी को पसंद नहीं होता। अंतर में बसी निराशा मनुष्य का सुख उसी प्रकार मलीन बना देती है, जिस प्रकार आग का धुंआ घर के वातायनों को काला कर देता है। मलीन मुख, उदास वृत्ति और विषादी स्वभाव वाले का साथ करना किसे पसंद आ सकता है ? अन्य प्रसन्न प्रवृत्ति वाले व्यक्ति एक-दूसरे से मिलने पर उत्साहवर्द्धक और सरस बातें करते हैं, जीवन की सफलता के चित्र खींचते हैं, वहाँ निराश व्यक्ति मिलने पर आहों, कराहों विषादपूर्ण बातों से लोगों का सिर भारी कर देता है।

अवसाद जब मनोरोग बन जाता है तो व्यक्ति को आत्महत्या के लिए विवश कर देता है। आत्महीनता की ग्रंथि सतत् अंदर पलती रहे तो इसकी परिणति भी अंततः अवसाद में ही होती है।

(४) **आतुरता**—आतुरता का अर्थ है ऐसी अधैर्य की—जल्दबाजी की स्थिति कि व्यक्ति को कभी चैन न पड़े। अचेतन में घुसी यह प्रवृत्ति अनेक मनोशारीरिक रोगों के रूप में प्रकट होती है। उच्च रक्तपात से लेकर, हृदयाघात, कोलाइटिस, पेप्टिक अल्सर व कैंसर को भी आज मनोशारीरिक व आतुरताजन्य ही बताया जा रहा है। किसी भी प्रकार का अधैर्य सामयिक या दीर्घकालिक समस्या के रूप में उपस्थित हो सकता है। जब यह व्यवहार का अंग बन जाता है तो मनोरोग का स्वरूप ले लेता है। ऐसे व्यक्तियों को एंक्शीयस पर्सनालिटी कहा जाता है। विक्षिप्तता व स्कीजोफ्रेनिया का एक पूर्व लक्षण भी यह हो सकता है। ऐसे व्यक्ति अपने हर काम निर्धारित समय से स्वयं भी जल्दी करते हैं व दूसरों को भी उसके लिए हैरान करते रहते हैं।

आतुरता का एक छोटा स्वरूप साधारण सी बातों में प्रकट हो उठने वाली चिंता भी हो सकता है।

चिंता की चिता में बैठा मनुष्य अपनी यातनापूर्ण मृत्यु की प्रतीक्षा करने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। जिस वृक्ष में आग लग गई हो अथवा जिसे दावाग्नि ने झुलसा डाला हो उसमें हरियाली की आशा करना दुराशा मात्र है। ऐसे दाव-दग्ध वृक्ष में न नए पत्ते उग सकते हैं, न फूल खिल सकते हैं और न फल आ सकते हैं। उसका ठूँठ होकर निरुपयोगी हो जाना निश्चित है।

प्रगति और उन्नति का उत्साह मन में उत्पन्न होता है। बुद्धि उसकी योजना बनाती है और शरीर उसको कार्यान्वित करता है। जिसका मन और मस्तिष्क चिंता से तप रहा हो, शारीरिक स्वास्थ्य उसकी आग में आहुति बन रहा हो, ऐसे व्यक्ति के हृदय में उत्साह का जन्म होना असंभव है। बुद्धि का कुंठित तथा कलुषित हो जाना स्वाभाविक है और अस्वस्थ शरीर तो किसी योग्य रह ही नहीं सकता। इस प्रकार जिस मनुष्य की यह तीनों शक्तियाँ बेकार हो जाएँ, उसे प्रगति और उन्नति के शब्द अपने शब्दकोष से निकाल ही देने चाहिए।

असंतोष भी इसी का दूसरा स्वरूप है। बात-बात में कमी निकालना अभाव की समस्या का रोना तथा उसके लिए सतत् परेशान रहना, यह इनमें सामान्यतया पाया जाता है।

असंतोष भी एक प्रकार की मानसिक व्याधि ही होती है। यह मनुष्य की सुख-शांति को हरण कर लेता है। 'संतोषी सदा सुखी'—की तरह कहना होगा—'असंतोषी सदा दुःखी'। यह गलत भी नहीं है। असंतोष का जन्म अभाव से बतलाया गया है। जिसके पास काम न हो, भोजन-वस्त्र का अभाव हो, जीवनयापन के सामान्य साधनों की कमी हो उसे असंतोष होना स्वाभाविक है। किंतु यह असंतोष नहीं होता, जिसको मानसिक व्याधि कहकर निंदा की जाती है। इस प्रकार का अभावजन्य असंतोष वास्तव में असंतोष न होकर आवश्यकता का दबाव होता है। यह बुरा नहीं। यदि आवश्यकताओं का दबाव अकारण सह लेने का अभ्यास बना लिया जाए तो मनुष्य सामान्य स्थिति से भी नीचे गिरकर दीन और दरिद्री बन जाए। कहीं से कुछ मिल गया तो खा लिया, नहीं तो भूखे पड़े तरस रहे हैं। कपड़ों के स्थान पर चीथड़ों को ही लपेटे हैं। इस प्रकार का विवशतापूर्ण जीवन मनुष्य के योग्य नहीं। वह तो बुद्धि एवं पुरुषार्थ से वंचित पशुओं का जीवन है। आवश्यकताएँ मनुष्य को पुरुषार्थ एवं परिश्रम की प्रेरणा देती हैं। उनकी माँग का उचित उत्तर दिया ही जाना चाहिए।

मानसिक व्याधि वाला असंतोष दूसरी चीज है। उसका जन्म अभाव अथवा आवश्यकता से नहीं, बल्कि लोभ और तृष्णा से होता है। यह एक असात्विक स्वभाव और आसुरी वृत्ति होती है। जो अकारण ही यातना दिया करती है। इस वृत्ति का व्यक्ति सब कुछ होने पर भी उस सुख से वंचित रहता है। असंतोषी की पीड़ा उसे घेरे ही रहती है। लोभ के कारण असंतोषी व्यक्ति संपत्ति एवं संपन्नता की दशा में भी अपने को अभावग्रस्त अनुभव किया करता है। लक्ष्मी का भंडार पृथ्वी की वसुधा और कुबेर का कोष क्यों न दे दिया जाए, किंतु असंतोष का रोगी कभी संतुष्ट नहीं होता।

(५) अपराधी मनोवृत्ति—आज इस प्रवृत्ति के लोगों का बाहुल्य है। जीवनयापन की शैली ही जब बदल जाए, उसमें अनैतिकता से ही

निर्वाह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष बन जाए तो धीरे-धीरे यह रोग का रूप ले लेता है। अनैतिक आचरण से अंतर्द्वंद्व उठते हैं—आत्म-ग्लानि बढ़ती है। समाज की निंदा, तिरस्कार और शासन का न्याय दंड सदा डराता रहता है। इस दबाव से मनःसंस्थान इतना पिसता है जितना कि लगातार मानसिक श्रम करने पर भी सहन नहीं करना पड़ता है। संतुलित जीवनयापन करने के लिए चिंतन की संतुलित दिशाधारा लोगों को मालूम नहीं होती, फलतः इधर से उधर भटकने और अचित्य चिंतन करने लगते हैं। भय, आशंका, निराशा उन्हीं लोगों को होती है जो परिस्थितियों पर असंतुलित प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं और घबराहट में अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने की तरह मस्तिष्क को विक्षिप्त एवं अर्धविक्षिप्त बना लेते हैं।

अफेक्शन एवं पर्सनालिटी डिसआर्डर्स भी अपने अंतिम रूप में अपराधी वृत्ति का स्वरूप ले लेते हैं। हमेशा आक्रामक चिंतन एवं कामुक विचार भी इसी प्रकार मनोविकार में गिने जाते हैं तथा अंततः भयानक स्वरूप ले लेते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुधा प्रारंभ में दुर्व्यसन तथा नशीली गोलियों आदि के भी शिकार होते हैं।

(६) **अल्पमंदता**—यह जन्मजात भी हो सकती है व आत्महीनता के कारण अपने पर थोपी हुई भी। अदक्ष होना कोई प्रकृति प्रदत्त अभाव नहीं है। यदि कोई रोग मस्तिष्क में हुआ हो-यथा सरिब्रल पैल्सी, ब्रेन ट्यूमर अथवा एनकेफेलाइटिस, तो यह चिंतन, कि व्यक्ति अदक्ष है, उसे अल्पमंद बनाकर छोड़ता है। ऐसे व्यक्तियों के विचार छितराए रहते हैं। जो भी सोचते हैं, आधा अधूरा ही सोचते हैं विकल्पों पर चिंतन करने के बजाय अपनी अकुशलता का रोना ही रोते रहते हैं। आलसी व प्रमादी इसी प्रकार बने रहने पर अंततः अल्पमंदता को ही प्राप्त होते हैं। यह हर दृष्टि से परिवर्तनशील है, यदि व्यक्ति यह निर्णय कर ले कि उसे क्या व कैसे करना है ? सही दिशा न मिल पाने से बहुसंख्य इसी स्थिति में पड़े अंततः रोगी हो जाते हैं।

मस्तिष्क के शक्ति केंद्र एवं उनके जागरण से मनोविकारों का निवारण

अध्यात्म की मान्यता यह है कि हमारा मस्तिष्क दैवी शक्तियों का केंद्र है। साधारण स्थिति में ये सभी प्रसुप्त स्थिति में पड़े रहते
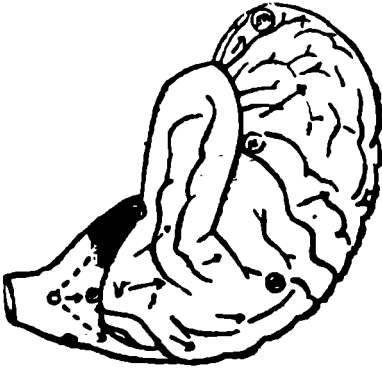
मस्तिष्क के छः शक्ति केन्द्र

१—असन्तुलन हेतु।
२—सनक हेतु।
३—अवसाद हेतु।
४—आतुरता हेतु।
५—आक्रामकता हेतु।
६—बुद्धि सम्बर्धन हेतु।

हैं, पर अपने भावनात्मक चिंतन द्वारा प्राण प्रवाह को उन केंद्रों तक दौड़ाकर उन्हें सक्रिय बनाया व उस माध्यम से उनसे संबंधित मनोविकारों का शमन किया जाना संभव है। स्थूल दृष्टि से देखने का प्रयास करने पर नो ग्रेटर मैटर क्षीर सागर में इन्हें पाया नहीं जा सकता, परंतु उनके समीप स्थित स्थूल अंगों के कार्यों से जोड़कर उन्हें समझाया तो जा सकता है। मिडब्रेन (सुषुम्ना व मस्तिष्क का मिलन बिंदु) में स्थित—ऐसेडिंग रेटीकुशर एक्टिवेटिंग सिस्टम (ए. आर. ए. एस.) एक प्रकार का फब्बारा है (चित्र क्र. १) जो शरीर की ज्ञानेंद्रियों व कर्मेंद्रियों से प्राप्त संदेशों द्वारा जाग्रत रहता केवल चेतना के स्फुलिंग इसमें उठते रहते हैं। प्राण प्रवाह इड़ा पिंगला नाड़ी के माध्यम से सुषुम्ना में जिस सस्नायु प्रक्रिया को उत्तेजित करते हैं वह इस स्फुल्लिग से प्रवाहित हो निर्देशित स्थल पर जाकर टकराती हैं व सतत् उत्तेजित करती है। मस्तिष्क के ६ केंद्र अग्र प्रकार हैं—

(देखें चित्र क्रम १, २ व ३)
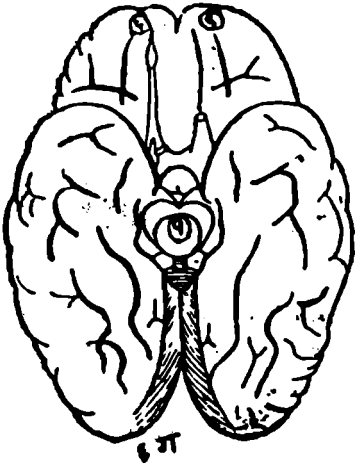
(१) संतुलन हेतु—(आवेश पर नियंत्रण, समस्वरता की मनःस्थिति)—थैलेमस का ऊपरी व पिछला भाग जिसे वैज्ञानिक पल्वाइनर कहते हैं। यहाँ पर थैलेमस के वे महत्त्वपूर्ण न्यूकलाई

बिखरे पड़े होते हैं जिन्हें उत्तेजित कर आवेश के लिए उत्तरदायी केंद्रों को नियंत्रित करना संभव है जो थैलेमस व हाइपोथैलेमस के मध्य अवस्थित होते हैं। यह भाग मस्तिष्क के फब्बारे ए. आर. एस. के सबसे समीप व सबसे सक्रिय है। मध्य में स्थित होने के कारण दोनों सेरेबल हेमीस्फीयर में संतुलन बिठा पाना भी इस स्थान से पूरी तरह संभव है।

(२) सनक व भ्रम पर नियंत्रण हेतु अकारण भय के निवारण के लिए—बायें व दायें सेरीब्रल हेमीस्फीयर का पेराइटल लोब वाला भाग (चित्र में अंकित '२' जो सेन्सरी कार्टेक्स के पीछे
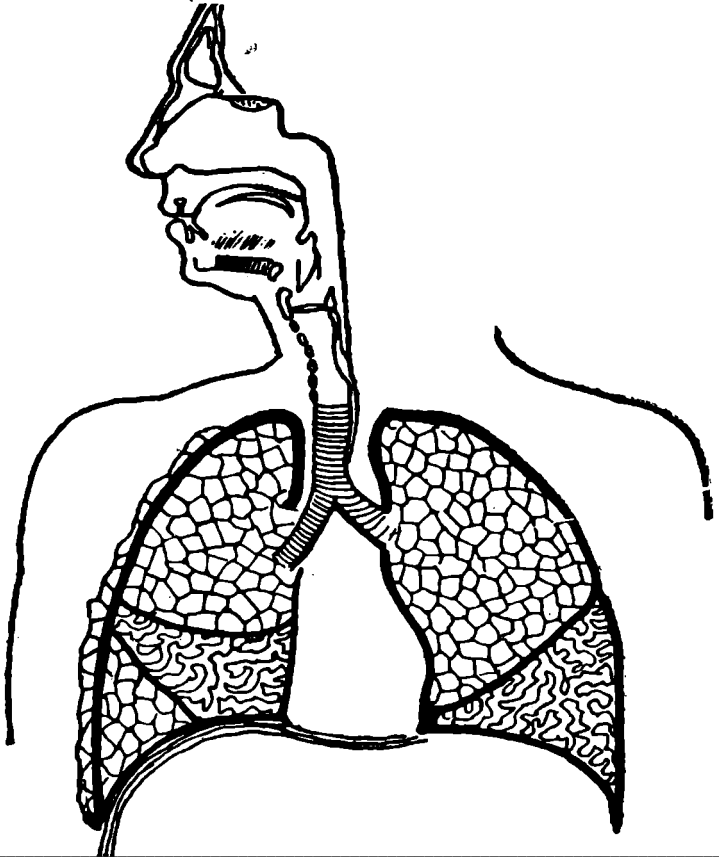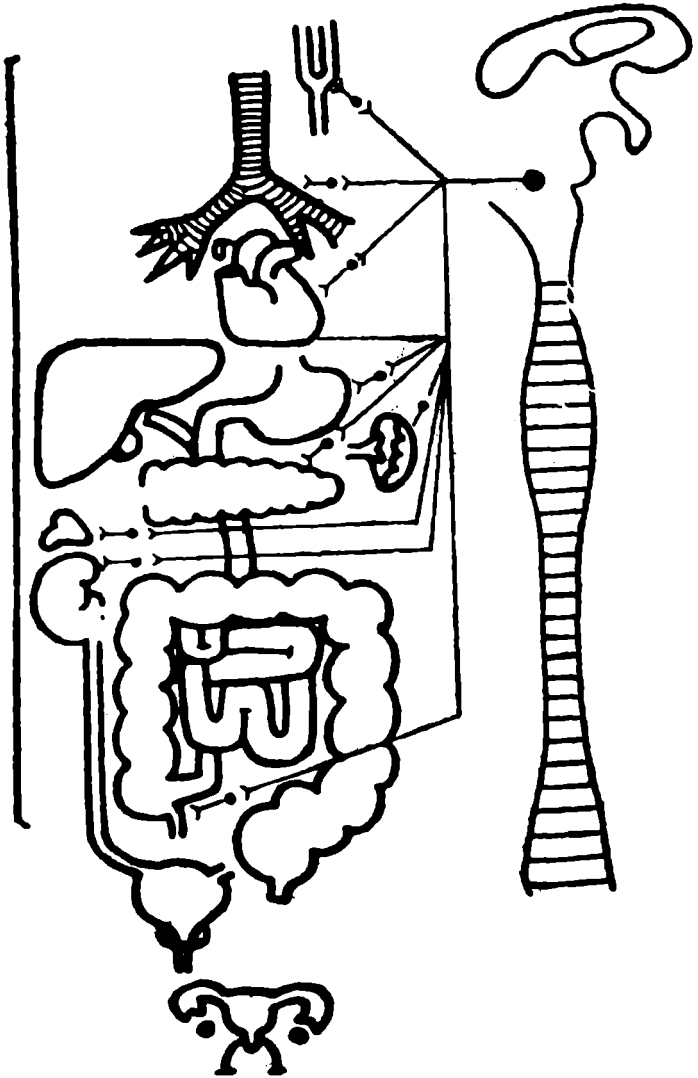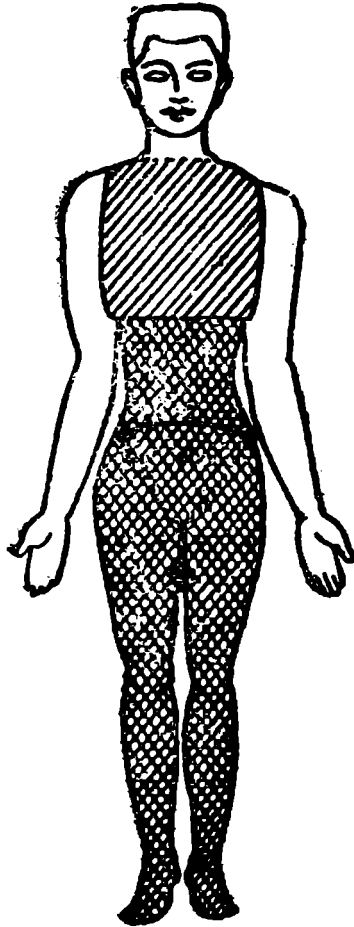
होता है। बाहरी व अंतःसतह के मध्य में स्थिति बिखरे ये केंद्र किसी भी व्यक्ति के स्वयं के विषय में निर्धारण, स्मृति आदि कार्यों से संबंधित हैं तथा जागरण के बाद ६३ प्रतिशत सोए पड़े कार्टेक्स के एक बहुत बड़े व महत्त्वपूर्ण भाग की संभावनाओं का उद्‌घाटन करते हैं। मिडब्रेन से ऊपर उठता प्रवाह सीधे इन केंद्रों से टकराता, उन्हें जगाता व प्रकाशवान बनाता है। रोगी की प्राणायाम क्रिया के साथ की गई भावना निरंतर अभ्यास से विकारों पर नियंत्रण में सहायक सिद्ध होती है।

(३) अवसाद, निराशा के निवारण हेतु—हाइपो थेलेमस के न्यूकलाई (चित्र में अंकित ६) जो उत्तेजित होने पर महत्त्वपूर्ण स्नायु रसों का स्राव करते हैं व निकट स्थित प्लेजर सेंटर्स व अन्य केंद्रों को सक्रिय बनाकर रोगी को आशा से भर देते हैं, आत्म विश्वास बढ़ाते हैं। थेलेमस से थोड़ा आगे स्थित यह हिस्सा मस्तिष्क के एंजाइम्स—एनकेफेलीन व एंडार्फिंस के स्राव तथा पिट्युटरी व पीनियल के नियंत्रण व स्वचालित स्नायु संस्थान के नियमन के लिए उत्तरदायी है। कमिशुरल फाइबर्स के माध्यम से मिडब्रेन भेजे गए संदेश न्यूकलाई को उत्तेजित करने व रसस्राव द्वारा वांछित प्रभाव लाने में सफल होते हैं।

(४) आतुरता, जल्दबाजी, अधैर्य चिंता के निवारण हेतु—एमिग्डलाइट बॉडी में अवस्थित न्यूकलाई (चित्र में अंकित ४) जो एप्टीरियर परफोरेटेड सब्सटेंस के दोनों ओर स्थित होते हैं व हाइपोथेलेमस से ही नियंत्रित होते हैं। इनके पिट्युटरी व पीनियल संबंधों तथा लिंबिक सिस्टम से समीपता व परस्पर संबंध के कारण चिंता के लिए उत्तरदाई रसों को निष्क्रिय करने वाला हारमोन उत्तेजन के फलस्वरूप स्रावित होता है व व्यक्ति को तनाव निवारण, प्रसन्नता की स्थिति में लाता है।

(५) आक्रामक मनःस्थिति को शांत करने व कामुक अवांछनीय चिंतन को रोकने के लिए—लिंबिक सिस्टम के अग्रभाग पर स्थित फार्निक्स के समीप के डीपर न्यूकलाई (चित्र में अंकित ५) ये मस्तिष्क के मध्य भाग पर भृकुटि की सीध में पीनियल व पिट्युटरी को मिलाने वाली रेखा के मध्य के लगभग होते हैं। मिडब्रेन से चलने

वाला स्नायु प्रवाह सीधे गहराई में बैठे इन केंद्रों को उत्तेजित करता व रसस्राव के लिए उत्तरदायी बनता है। यहाँ स्थित ग्रेमेटर के न्यूकलाई लगभग सभी महत्त्वपूर्ण केंद्रों, थेलेमस व हाइपोथेलेमस से जुड़े होते हैं। इस प्रकार भावनात्मक नियंत्रण की स्थिति ला सकने में इनके उत्तेजन से सहायता मिलती है।

(६) मेधावर्धन-अल्पमंदता निवारण हेतु—प्रि-फ्रंटल कार्टेक्स में स्थित बुद्धि से संबंधित केंद्र (चित्र में अंकित ६) मस्तिष्क का अग्रभाग फ्रंटल लोब है। दोनों आँखों के पीछे की ओर इसका नुकीला अग्रभाग होता है जिसमें स्थित केंद्र उत्तेजित होने पर सतत् प्रक्रिया द्वारा इस क्षेत्र को प्रकाशवान बनाते व प्रसुप्त को जगाते हैं। संभावनाएँ होने पर निश्चित ही भावना पूर्वक किए गए प्राणायाम से वृद्धि बढ़ती है, तर्क शक्ति विकसित होती व भावाभिव्यक्ति की कला प्रखर होती है।

उपरोक्त विभाजन स्नायु विज्ञान व योग विज्ञान की क्रमशः स्थूल व सूक्ष्म नाड़ियों में परस्पर संगति बिठाते हुए किया गया है। मूल तो वह दर्शन है जो हर व्यक्ति द्वारा प्राणायाम की क्रिया के साथ स्वसंवेदन स्वनिर्देश देते हुए केंद्रों के प्रकाशवान होने तथा प्रश्वाँस के साथ विकारों के निष्कासित होने के रूप में किया जाता है। प्राणायाम-प्राणधारण व प्राण विनियोग की प्रक्रिया है, मात्र छाती फुलाकर साँस खींच लेना, निकाल बाहर करना नहीं। इसी कारण इन निर्देशों को हमेशा याद रखने व पूरे निष्ठाभाव के साथ उन्हें बार-बार दुहराने की सलाह प्रयोग कर्त्ताओं को दी जाती है।

प्राणायाम उपचार प्रक्रिया—सबसे पहले हर व्यक्ति को साँस लेने का सही तरीका सीखना होगा। अधिकांश व्यक्ति उथली साँस लेकर रक्त-अशुद्धि को प्रत्येक श्वाँस के साथ बढ़ाते व अपनी आयु उसी अनुपात में कम करते रहते हैं।

साँस लेने की क्रिया में चार भाग होते हैं—पूरक-अंदर श्वाँस खींचना अतः कुंभक अर्थात् श्वाँस को अंदर रोकना, रेचक अर्थात् श्वाँस बाहर निकालना, वाह्य कुंभक अर्थात् प्रश्वाँस के बाद थोड़ी देर रुके रहना। इन नामों के जंजाल व गहराई में न जाकर इसे यह माना जाए कि श्वाँस प्रक्रिया भी नियमबद्ध पी. टी. की तरह की जाती है व

आवश्यकतानुसार श्वाँस अंदर रोकने व बाहर रोकने का समय बढ़ाया-घटाया जा सकता है। तालबद्ध प्राणायाम व प्राण प्रयोग के आध्यात्मिक प्राणायामों में बाह्य कुंभक करना अनिवार्य है, भले ही वह कुछ सेकेंडस् का ही क्यों न हो। व्यायाम परक रोग निवारक प्राणायामों में रेचक के तुरंत बाद दूसरा प्राणायाम आरंभ किया जा सकता है। पूरक कुंभक—रेचक की १ : २ : १ अर्थात् जितने में पूरक उससे दूने में अंतः कुंभक तथा पूरक के बराबर रेचक, यही सबसे सुगम मात्रा है।

प्रश्वसन प्रक्रिया उदर से भी होती है व छाती से भी। सुखासन में बैठकर वाँछित साफ स्थान पर वस्त्र बिछाकर लेटकर हृदय पटल (डायफ्राम माँस पेशी) व उदर से खींचे गए श्वाँस-प्रश्वाँस को श्वसन तथा छाती व पसलियों के विस्तार से किए गए पूरक रेचक को छाती श्वसन कहते हैं। जब दोनों ही प्रक्रियाओं का योग कर दिया जाता है तो वह योग की रोग निवारक—सूक्ष्म व्यायाम वाली पूर्ण यौगिक श्वसन क्रिया कहलाती है। यही वांछनीय सर्वश्रेष्ठ है। पहले छाती, फिर पेट को शिथिल करके रेचक किया जाता है तथा एक झटके से नीचे से ऊपर तक वायु को निष्कासित कर दिया जाता है। यह तो श्वसन प्रक्रिया-उपचार का पूर्वाभ्यास हुआ। जब प्रयोग रोगानुसार करने होते हैं तो ६ रोगों विकारों के अवतार अपने लिए उपयुक्त योग का चयन कर उपरोक्त स्थिति में बैठकर १० से १५ मिनट तक यह क्रिया करते रह सकते हैं। धीरे-धीरे प्राणायामों की संख्या व हर श्वाँस के साथ गहराई बढ़ाई जा सकती है। जिस आसन में शरीर तनाव रहित हो, अनावश्यक दबाव न पड़ता हो वही उपयुक्त है। कंधे ऊपर की ओर हों, आगे झुके न हों। प्रक्रिया बड़ी सादी निम्नानुसार है—

प्राणायाम योग क्रमांक १—इसे आवेग ग्रस्त मनःस्थिति के असंतुलन व क्रोध आवेश प्रधान व्यक्ति करें। बाईं ओर से श्वाँस खीचें। भावना यह करें कि प्रकाश की किरणें चंद्रनाड़ी से अंदर प्रवेश कर इड़ा पिंगला सुषुम्ना धुरी पर प्राण प्रवाह को उत्तेजित कर रही हैं। वहाँ से निकला प्रकाश पुंज इसके थेलेमस स्थित केंद्र से टकराकर उसे प्राणवान बना रहा है। जितनी देर साँस रोकें यही भावना करें कि आवेश अब शांत होता जा रहा है, मनःस्थिति संतुलित व व्यवस्थित बनती चली जा रही है एवं केंद्र जहाँ पहले

अंधेरा था अब प्रकाश से भरा ज्योतिपुंज बन गया है। रेचक के साथ जो दाईं ओर से किया जाता है—यही भावना की जाए कि पहले जो विकार अपने अंदर थे, वे प्रश्वाँस के साथ बाहर निखिल ब्रह्मांड में निष्कासित किए जा रहे हैं। पीला या मटमैला प्रकाश बाहर जा रहा है व धीरे-धीरे आवेश शांत हो रहा है। यही भावना हर क्रिया के साथ की जाए। हर बार इन्हीं संदेशों को दुहराते चला जाए।

प्राणायाम योग क्रमांक २—इसे सनक, भ्रम व अकारण भय से ग्रस्त मनःस्थिति के व्यक्ति करें। इसमें बायें से दाँयें व फिर दाँये से बायें वेगपूर्वक पूरक, कुंभक, रेचक का क्रम बार-बार किया जाता है। हर बार पूर्वाध क्रम से पूरा होने पर यह कल्पना की जाए कि मस्तिष्क के फब्बारे के पास उत्सर्जित प्राण प्रवाह का स्फुर्ल्लिग ऊपर उठता व पेराहरल कार्टेक्स स्थित केंद्र से टकराता, उसे जगाता व प्रकाशवान बनाता है। उत्तरार्ध के साथ ही सारी कुकल्पनाएँ वेग पूर्वक बाहर निकल जाने की भावना की जाती है। हर बार की गई दो बार में पूरी हुई यह क्रिया अंदर सही विचार, सही कल्पनाएँ, व्यक्ति-विशेष के विषय में श्रेष्ठ चिंतन लाती व अंदर विराजमान दुश्चिंतन को खदेड़ती चली जाती हैं।

प्राणायाम योग क्रमांक ३—अवसाद, निराशा, कायर, भीरु मनःस्थिति के व्यक्ति इसे संपादित करें। इस बार साँस दाईं ओर से (सूर्य नाड़ी) खींची जाए व पूरक के साथ यही ध्यान किया जाए कि आशावादी, प्रसन्नतादायक विचार अखिल ब्रह्मांड से अंदर प्रवेश कर रहे हैं। कुंभक की अवधि में प्राण प्रवाह के मस्तिष्क मध्य से ऊपर उठने व हाईपोथेलेमस स्थित केंद्रों को प्रकाशित प्राणवान बनाने की कल्पना की जाती है। भावना की जाती है कि हर बार तेजी से यह सद्चिंतन आकर घर जमाये बैठी अवसाद कारक प्रवृत्तियों को समूल उखाड़ रहा है, दोनों में जबर्दस्त द्वंद्व छिड़ा है व अंततः अवसाद को जन्म देने वाला चिंतन बाईं ओर से होकर रेचक के साथ निकाल बाहर कर दिया गया है। हर प्रकार के साथ इन्हीं अभ्यासों को दुहराते चलें।

प्राणायाम योग क्रमांक ४—इसे आतुरता, जल्दबाजी के रोगी, अधैर्य मनःस्थिति के व्यक्ति करें। बाईं ओर से चंदनाड़ी की ओर से

शांतिदायक, धैर्य प्रदान करने वाले, सारी व्यग्रता तनाव तथा बेचैनी को समाप्त करने वाले सद्विचार ब्रह्मांड के प्राण महासागर से खींचकर मस्तिष्क मध्य से स्नायु विद्युत्स्फुल्लिंग प्रवाहों के साथ एमग्डेलाइड बॉडी स्थित (पिचुटरी के समीप के) केंद्रों को जगाकर, प्रकाशवान बना रहे हैं तथा इससे उत्पन्न विद्युत-प्रवाह के स्फुल्लिंग आतुरता को जन्म देने वाले विचारों को साथ लेकर बाईं ही ओर से इन्हें रेचक के साथ बाहर निकाल रहे हैं। यह चिंतन हर क्रिया के साथ दुहराया जाए हर बार और प्रचंड संकल्प युक्त बनाया जाए।

प्राणायाम योग क्रमांक ५—अपराधी मनोवृत्ति के व सतत् अवांछनीय चिंतन से ग्रस्त मनःस्थिति के व्यक्ति इसे संपन्न करें इस बार दाईं ओर सद्विचार पूरी तेजी से अंदर की ओर पूरक के साथ खींचे जाए। भावना यह की जाए कि मन की अचेतन प्रवृत्तियों में जो भी आदिम दुर्गुण संव्याप्त थे, उन्हें शांत करने वाला प्राण प्रवाह मिडब्रेन से ऊपर बादलों की तरह उठता व लिंबिक सिस्टम स्थित फार्निक्स के समीपस्थ के न्यूकलाई को उत्तेजित जाग्रत, अभिसिंचित करता चला जा रहा है। हर खींची साँस के साथ जो विचार अंदर आए हैं वे इतने दैवी हैं शुभ हैं कि असत् विचारों के लिए ठहरने की कोई स्थिति अब नहीं। हर बार कुंभक के बाद रेचक के साथ प्रश्वाँस द्वारा इन्हें दाईं ओर से ही बाहर कर दिया जाए। यह प्रक्रिया बार-बार दुहराई जाए व हर बार सद्चिंतन को मस्तिष्क पटल पर छाया व दुश्चिंतन को भागते देखा व कल्पित किया जाए। संदेश इतने प्राणवान हों कि प्राणायाम की संपूर्णता के साथ ही लगने लगे कि अपने अंदर से अब आक्रामकता, कामुकता की आदिम वृत्ति चली गई व देव पक्ष जाग उठा है।

प्राणायाम योग क्रमांक ६—अल्पमंदता से ग्रस्त, आत्महीनता की प्रवंचना में पड़े, अस्त-व्यस्त विचार वाले व्यक्ति अपनी मेघा को पैना प्रखर बनाने के लिए इस अभ्यास को करें। हर बार पूरक कुंभक-रेचक हेतु साथ ही मदद से निर्देशत नथूने बंद कर सांस अंदर खींची जाती व खोलकर बाहर निकाली जाती है। इस योग में हाथों का प्रयोग न कर शांत स्थिति में बैठकर दोनों ही नथूनों से तेजी से श्वाँस बाहर खींचकर मंथन व प्राणों के आवागमन की भावना की जाए व मस्तिष्क पटल पर इन विद्युत प्रवाहों को दौड़ते व मेघा के लिए उत्तरदायी केंद्रों को जगाते

देखा जाए। सोचा जाए कि हर बार दोनों ही ओर से खींचा गया प्राण प्रवाह तेजी से प्रिफंटल लोन के केंद्रों से टकराता, उन्हें प्रकाशवान बनाता व रेचक के साथ दोनों नथूनों से वापस लौट जाता है। अगली बार वह दूनी शक्ति से आता है व फिर मस्तिष्क के अग्रभाग को प्रकाश से भर देता है। बुद्धि प्रखर होने, अपनी ग्रंथियाँ समाप्त होने, अपने को श्रेष्ठ और बुद्धिमान और भी अधिक मनस्वी होने की कल्पना प्रत्येक प्राणायाम के साथ की जाए। प्रत्येक बार दुहराया गया यह अभ्यास पूरे स्नायु प्रवाह को सक्रिय बनाता चला जाता है।

ऊपर जो यह ६ योग व्यक्त किए गए, उन्हें संक्षेप में फिर दुहराया जाए—आवेश हेतु बायें से पूरक-दायें से रेचक, सनक हेतु बायें-दायें-बायें यही क्रिया दो बार, अवसाद हेतु दायें से पूरक बायें से रेचक, आतुरता हेतु बायें से पूरक व दायें से रेचक, अपराधी वृत्ति हेतु दायें से पूरक व बायें से ही रेचक एवं अल्पमंदता हेतु दोनों नथुनों से पूरक व रेचक।

इस प्रकार यह मनोविकार निवारण हेतु उपचारों का प्रावधान हुआ। इसमें वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ योग विज्ञान के गहन सूत्रों व सिद्ध अनुभूत प्रयोगों का समावेश है। स्वनिर्देश के माध्यम से हर बार की गई यह क्रिया निश्चित ही मनोविकारों के शमन हेतु सफल होती व मन की शक्तियों को बढ़ाती देखी जा सकती है। प्रतिदिन प्राणायाम अवधि के बाद १० मिनट शांत मनःस्थिति में शिथिलीकरण की स्थिति में बैठकर या लेटकर अपने संकल्पों को याद रखने का प्रयास करें व यह भावना करें कि हर दिन एक नये जन्म के रूप में आ रहा है, अब वह रोगी जैसी मनःस्थिति नहीं रही। धीरे-धीरे संकल्प दृढ़ होता है व अंदर की प्रतिक्रियाएँ जड़ जमाती चली जाएँगी।

कुछ अन्य लाभदायक प्राण-प्रयोग

प्राण वृद्धि का अभ्यास

कमरे के फर्श, तख्त या कसी हुई चारपाई पर सीधे लेटकर समस्त शरीर को शिथिल, ढीला कर दें। दोनों हाथों को छाती के नीचे, जहाँ से दोनों तरफ की पसलियाँ अलग होने लगती हैं, रखें। यह सूर्य—चक्र का

स्थान है। अब धीरे-धीरे तालयुक्त श्वाँस लेने लगें। जब वह ताल ठीक हो जाए तो कुछ गहरी साँस लेते हुए यह भावना करें कि प्रत्येक साँस प्राण-भंडार से अधिक प्राणशक्ति खींचकर ला रही है और वह सूर्य चक्र से एकत्रित हो रही है। जब साँस को बाहर निकालें तो भावना करें कि वह सूर्य चक्र से एकत्रित हो रही है। जब साँस को बाहर निकालें तो भावना करें कि वह प्राणशक्ति समस्त शरीर में सिर से पैर तक फैलकर विभिन्न अंगों को जीवनी शक्ति प्रदान कर रही है। इस अभ्यास को करते समय क्रमशः ऐसे तन्मय हो जाएँ कि बाहर से प्राणशक्ति के भीतर जाने और सूर्य चक्र द्वारा उसके शरीर में प्रत्येक अंग, प्रत्येक नाड़ी के प्रत्येक शिरा और अणु-अणु तक पहुँचने की एक मूर्ति सी भीतरी नेत्रों से दिखाई पड़ने लगे। इस क्रिया में बहुत बल लगाने की आवश्यकता नहीं, केवल भावना और आकाँक्षा करते हुए शांतिपूर्वक प्राणशक्ति को वैसी आज्ञा देना ही पर्याप्त होता है। कुछ दिन के अभ्यास से यह क्रिया स्वाभाविक रूप से होने लगती है। इससे समस्त नाड़ीजाल ताजा और शक्तिशाली हो जाता है और सब तरह की थकावट और निर्बलता उसी समय दूर होती जान पड़ती है। थोड़े अर्से के अभ्यास के बाद ही इससे स्वास्थ्य की आश्चर्यजनक रूप से उन्नति हो जाती है।

रक्त-संचालन संबंधी अभ्यास

जिन व्यक्तियों का रक्त-संचार ठीक दशा में नहीं होता उनको प्रायः सिर दर्द और विभिन्न अंगों से निर्बलता या थकावट जान पड़ने की शिकायत हुआ करती है। ऐसी अवस्था में अगर लेटकर या किसी साधारण आसन पर सीधे बैठकर तालयुक्त श्वाँस का अभ्यास किया जाए और उसी के साथ रक्त को नीचे की तरफ जाने की प्रेरणा की जाए तो कुछ ही समय में सिर पीड़ा से छुटकारा मिल सकता है और पैरों तथा अन्य अंगों की निर्बलता भी दूर हो सकती है। यह बात चाहे सुनने में कठिन अथवा अटपटी सी जान पड़ती हो पर रुधिर का संचालन बहुत कुछ हमारी मानसिक आकांक्षा अथवा भावना के नियंत्रण में रहता है। इसलिए लगातार भावना करते रहने से उसका शरीर के अभीष्ट स्थान पर पहुँचा सकना संभव होता है।

प्राणशक्ति की पूर्ति कैसे की जाए ?

त्रुटिपूर्ण आहार-विहार के प्रभाव से मनुष्य को किसी भी समय प्राणों की क्षीणता का अनुभव होने लगता है जिसके फलस्वरूप उसमें उत्साह तथा साहस का अभाव हो जाता है और वह किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने में हिचकने लगता है। ऐसी अवस्था में प्राण-संचय करने का अभ्यास बहुत लाभदायक होता है। इसके लिए चित्त लेटकर दोनों पैरों को एक दूसरे से मिला लिया जाए और दोनों हाथों की उँगलियों को भी सुविधानुसार एक दूसरे में अटका कर ग्रंथि रूप में कर लिया जाए। ऐसा करने से एक मंडल बन जाता है जिसके भीतर से प्राणशक्ति बाहर नहीं निकल सकती। इस प्रकार मंडल बाँधकर तालयुक्त श्वाँस लेना आरंभ करें तो प्राण शरीर में भरने लग जावेगा और कुछ मिनटों में ही जीवनी शक्ति की वृद्धि के रूप में उसका भाव शरीर में स्पष्टतः होने लगेगा।

समस्त शरीर को प्राण से भरने का उपाय

ऊपर दिए गए अभ्यास कुछ विशेष अंगों पर प्रभाव डालते हैं, पर योगियों की एक खास श्वाँस क्रिया ऐसी है कि जिससे समस्त शरीर को एक साथ जीवनी शक्ति प्राप्त होने का लाभ मिलता है। इसके लिए लेटकर शरीर को बिल्कुल शिथिल कर लिया जाता है और ताल-युक्त श्वाँस लेते हुए यह कल्पना की जाती है कि श्वाँस टाँगों की हड्डियों से, हाथों की हड्डियों से, जननेंद्रिय के सभी ओर से आ रही है और उन्हीं में होकर निकल रही है। इस कल्पना को बराबर बढ़ाते हुए यह कल्पना मूर्तिमंत कर लेनी चाहिए कि हमारे शरीर का रोम-रोम श्वाँस ले रहा है और निकाल रहा है और इस प्रकार समस्त शरीर प्राण से भरा जा रहा है। इससे कल्पना द्वारा और आदेश देकर ललाट, सिर के पिछले भाग, मस्तिष्क के आधार, सूर्य-चक्र, गुदाचक्र, नाभिप्रदेश, जननेंद्रिय में एक-एक करके भेजें और बराबर यह भावना करते रहें कि उनको पर्याप्त प्राणशक्ति प्राप्त हो रही है। इस प्रकार कई बार समस्त अंगों को प्राणशक्ति प्रदान करके अभ्यास को समाप्त कर दें और कुछ देर साधारण तालयुक्त श्वाँस लेकर उठ बैठें।

□□

अध्याय—५

प्राण-योग साधना के आध्यात्मिक प्रयोग

प्राणायाम मात्र श्वाँस-प्रश्वाँस नहीं एक विज्ञान सम्मत मानसोपचार प्रक्रिया है। प्राण का स्थूल ऑक्सीजन तत्त्व नहीं वरन् उसकी कारण शक्ति का परिणाम होता है कि इस प्रक्रिया को करने के बाद साधक स्वयं को अधिक शांत मनःस्थिति में पाता है। विधिपूर्वक खींचा गया श्वाँस शरीर स्थित प्राण के भंडार में वृद्धि करता है तथा मस्तिष्क के शक्ति केंद्रों को जाग्रत कर सामान्य को असामान्य बनाने तथा रोगी मनःस्थिति वाले के विकारों का शमन करने में सहायक सिद्ध होता है। इस संबंध में योगविद्या के ज्ञाताओं का कथन है कि ऐसा करने से प्राण मस्तिष्क के स्नायुओं तथा नाड़ी केंद्र की चक्र उपत्यिकाओं में उसी प्रकार जमा हो जाता है जैसे स्टोरेज बैट्री में संग्रहीत विद्युत समयानुसार काम आती है। अपनी योगदृष्टि से विश्लेषण कर आप्त पुरुषों ने 'प्राण' को पाँच उपविभागों तथा ५ उपप्राणों में विभाजित किया है। ऐसा माना जाता है कि प्राण शरीर प्राणमय कोष इन्हीं दस के सम्मिश्रण से बनता है।

पाँच मुख्य प्राण हैं—(१) अपान (२) समान (३) प्राण (४) उदान (५) व्यान। उपप्राणों को (१) देवदत्त (२) कृकल (३) कूर्म (४) नाग (५) धनंजय नाम दिया गया है।

शरीर क्षेत्र में इन प्राणों के क्या-क्या कार्य हैं ? इसका वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में इस प्रकार किया गया है—

(१) अपान-अपनयति प्रकर्षेण मलं निस्सारयति अपकर्षति च शक्तिम् इति अपानः।

अर्थात्—जो मलों को बाहर फेंकने की शक्ति से संपन्न है वह अपान है। मल-मूत्र, स्वेद, कफ, रज, वीर्य आदि का विसर्जन भ्रूण का

प्रसव आदि बाहर फेंकने वाली क्रियाएँ इसी अपान प्राण के बल से संपन्न होती हैं।

(२) समान-रस समं नयति सम्यक् प्रकारेण नयति इति समानः।

अर्थात्—जो रसों को ठीक तरह यथास्थान ले जाता और वितरित करता है वह समान है। पाचक रसों का उत्पादन और उनका स्तर उपयुक्त बनाए रहना इसी का काम है।

पातंजल योग सूत्र के पाद ३ सूत्र ४० में कहा गया है—'समान जयात् प्रज्ज्वलम्' अर्थात् समान द्वारा शरीर की ऊर्जा एवं सक्रियता ज्वलंत रखी जाती है।

(३) प्रा-प्रकर्षेण नयति प्रकर्षेण वा बलं ददाति आकर्षत्ति च शक्ति स प्राणः।

अर्थात्—जो श्वाँस, आहार आदि को खींचता है और शरीर में बल संचार करता है वह प्राण है। शब्दोचार में प्रायः इसी की प्रमुखता रहती है।

(४) उदान—उन्नयति यः उद्आनयत्ति वा उदानः।

अर्थात्—जो शरीर को उठाए रखे, कड़क रखे, गिरने न दे वह उदान है। ऊर्ध्वगमन की अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष क्रियाएँ इसके द्वारा संपन्न होती हैं।

(५) व्यान व्याप्नोति शरीरं यः स व्यानः।

अर्थात्—जो संपूर्ण शरीर में संव्याप्त है वह व्यान है। रक्त संचार, श्वाँस-प्रश्वाँस ज्ञान-तंतु आदि के माध्यम से वह सारे शरीर पर नियंत्रण रखता है। अंतर्मन की स्वसंचालित शारीरिक गतिविधियाँ इसी के माध्यम से संपन्न होती हैं।

पाँच उप प्राण इन्हीं पाँच प्रमुखों के साथ उसी तरह जुड़े हुए हैं जैसे मिनिस्टरों के साथ सेक्रेटरी रहते हैं। प्राण के साथ नाग। अपान के साथ कूर्म। समान के साथ कृकल। उदान के साथ देवदत्त और व्यान के साथ धनंजय का संबंध है। नाग का कार्य वायु संचार, डकार, हिचकी, गुदा वायु। कूर्म का नेत्रों के क्रिया कलाप-कृकल का भूख-प्यास, देवदत्त का जँभाई—अँगड़ाई, धनंजय को हर अवयव की

सफाई जैसे कार्यों का उत्तरदायी बताया गया है, पर वस्तुतः वे इतने छोटे कार्यों तक ही सीमित नहीं है। मुख्य प्राणों की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित बनाए रखने में उनका पूरा योगदान रहता है। महाप्राणों की ओजस् व उपप्राणों को रेतस् भी कहा गया है।

इसी वर्गीकरण का उद्धरण गीता के चौथे अध्याय में मिलता है जहाँ श्रीकृष्ण प्राण की व्याख्या करते हुए अर्जुन से कहते हैं—

अपाने जुहवति प्राण प्राणेऽपानं तथापदे।
प्राणपान गती रुद्ध्वा प्राणायामापरायणाः।।

(गीता ४-२६)

अर्थात्—'प्राणायाम में परायण अन्य योगीगण प्राण और आपन की गति को अवरुद्ध करके अपान में प्राण का और प्राण में अपान का हवन करते हैं।' इस प्रकार की साधना करने वाले योगी भी अन्य विधियों से साधना करने वाले योगी भी अन्य विधियों से साधना करने वालों की तरह परमात्मा को प्राप्त करते हैं जैसा कि इसके आगे ही बतलाया गया है—

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुहवति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितः कम्मषाः।।
यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्यं यज्ञस्य कुतोऽस्य कुरुसत्तमः।।

(गीता ४-३०-३१)

अर्थात्—'अन्य नियमित आहार करने वाले योगीजन प्राणों को ही प्राणों में हवन करते हैं। इस प्रकार से यज्ञों द्वारा जिनका पाप नष्ट हो जाता है, वे सब यज्ञ के जानने वाले होते हैं ऐसे यज्ञ द्वारा प्राप्त ज्ञानामृत का सेवन करने वाले सभी योगीजन सनातन ब्रह्म (परमात्मा) को प्राप्त होते हैं। यज्ञ से रोहित पुरुष न इस लोक में सुख पा सकते हैं और न परलोक में कल्याण के भागी हो सकते हैं।'

इसकी व्याख्या करने से स्पष्ट होता है कि जो श्वाँस बाहर से भीतर की तरफ खींची जाती है वह प्राण कहलाती है और जो भीतर

से बाहर की तरफ निकाली जाती है; वह 'अपान' कही जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार पहले 'प्राण' को 'अपान' में हवन करना चाहिए अर्थात् श्वाँस को सामान्य क्रम में बाहर निकाल देने के बजाय उसे भीतर रोककर अंतः कुंभक करना चाहिए' अर्थात् बाहर निकाली श्वाँस को वहीं रोककर थोड़ी देर छाती खाली रहने देना चाहिए। ऐसा करने से बाह्य कुंभक होता है। जब श्वाँस भीतर ली जाती है तो यह फेफड़ों में भली प्रकार प्रवेश कर शुद्धि तथा मनःशक्ति के विकास का कार्य संपूर्ण सामर्थ्य के साथ करने लगती है।

प्राणायाम की अध्यात्म साधनाओं को अति महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मनः शोधन—विकारों के शमन के अतिरिक्त शरीर रूपी प्राण को ब्रह्मांड व्यापी महाप्राण से जोड़ने में प्राणधारण की साधक की सामर्थ्य बढ़ाने एवं उसे साधना के उच्चतर आयामों में पहुँचाने में प्राणायाम साधना को विशेष स्थान दिया गया है। इसमें क्रिया को अधिक नहीं, उस चिंतन को प्रधानता दी जाती है जो हर बार प्रत्येक क्रिया के साथ दुहराया जाता है।

इच्छा, भावना और संकल्प की विशेषताएँ जुड़ जाने से क्रियाओं का महत्त्व और प्रतिफल कई गुना अधिक बढ़ जाता है। सामान्य सी दिखाई देने वाली क्रिया भी चमत्कारी फल देने वाली सिद्ध होती है जबकि उपरोक्त विशेषताओं के अभाव में पूरे किए गए क्रिया-कृत्यों का वह लाभ नहीं मिल पाता जैसी कि अपेक्षा की गई थी। भावना और संकल्प का चमत्कार तो सर्वत्र देखा और अनुभव किया जा सकता है। एक-सी क्रियाएँ पूरी करते हुए भी परिणाम में भारी अंतर दृष्टिगोचर होता है। शरीर की दृष्टि से श्रम एक मजदूर भी करता है और एक पहलवान भी, पर एक अपना स्वास्थ्य गँवाता रहता है जबकि दूसरा बलिष्ठता एवं समर्थता का लाभ प्राप्त करता है। स्थूल दृष्टि से आहार आदि के अतिरिक्त विशेषता मानकर संतोष किया जा सकता है, पर बात ऐसी नहीं, एक जैसा आहार दोनों के लिए जुटा दिया जाए तो भी मजदूर किसी प्रकार अपना स्वास्थ्य भले ही संतुलित रख ले, पहलवान की भाँति अतिरिक्त सामर्थ्य अर्जित कर लेने में समर्थ नहीं हो पाता।

इस अंतर की खोजबीन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मात्र क्रियाओं को पूरा कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें भावना और संकल्प का पुट नहीं जुड़ा तो अभीष्ट परिणाम निकलना संदिग्ध ही बना रहेगा। अपेक्षाकृत पहलवान से अधिक श्रम करते हुए भी मजदूर द्वारा सामर्थ्य अर्जित न कर पाने का एक ही कारण होता है कि उसकी क्रियाओं में संकल्प और भावना का समावेश नहीं होता फलत: वह बलिष्ठ बनने का लाभ नहीं प्राप्त कर पाता। जबकि पहलवान की प्रत्येक क्रिया अपने लक्ष्य के लिए भावना एवं संकल्प से अनुप्राणित होती है। फलस्वरूप वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल रहता है।

साधनात्मक क्षेत्र में क्रियाओं से भी अधिक महत्त्व भावना इच्छा और संकल्प का है। प्राय: देखा भी जाता है कि साधना के एक जैसे विधि-विधान पूरे करते हुए भी एक व्यक्ति चमत्कारी सामर्थ्य अर्जित कर लेता है जबकि दूसरा कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाता। साधना के परिणामों में भारी अंतर का कारण स्पष्ट है। जिसे भावना एवं संकल्प के होने के रूप में समझा जा सकता है। प्रत्येक साधनात्मक क्रिया-कृत्यों के साथ यही नियम लागू होता है।

प्राणायाम के चमत्कारी परिणामों का वर्णन योग ग्रंथों में मिलता है उसे अनेक प्रकार की सिद्धियों का एक समर्थ माध्यम माना गया है। योगियों में विलक्षण सामर्थ्य विकसित हो जाने का वर्णन पढ़ा, सुना और देखा जाता है। यह संकल्प युक्त प्राणायाम की ही परिणति होती है। उनमें अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राण के संचय करते रहने से विकसित हो जाती हैं। वे इस तथ्य से भलीभाँति परिचित होते हैं कि प्राण का विपलु भंडार सर्वत्र भरा पड़ा है, पर जीवधारी मात्र उस भंडार से जीवनयापन करने की आवश्यकता पूरी करने योग्य अल्प मात्रा ही उससे प्राप्त कर पाते हैं। जिस प्रकार बूँद-बूँद के मिलने से घड़ा भरता है, उसी तरह योगी प्राणतत्त्व का संचय और अभिवर्धन करते रहते हैं तथा असाधारण शक्ति के स्वामी बन जाते हैं।

प्राण तत्त्व की प्रचुरता भौतिक सफलताओं का कारण बनती है और आध्यात्मिक प्रगति की भी। भौतिक जीवन में प्राणवान व्यक्ति का सर्वत्र वर्चस्व होता है। व्यक्तित्व की प्रभावोत्पादक क्षमता सहज

ही अपने अनुयायियों, सहयोगियों एवं समर्थकों की संख्या बढ़ाती है। जीवन संपन्न ही संसार में विजय हासिल कर पाते तथा कुछ महत्त्वपूर्ण कहा जाने योग्य काम कर पाते हैं। मनोबल, संकल्पबल की दृढ़ता प्राण तत्त्व के आधार पर ही बनती है जो हर भौतिक सफलता का आधार बनती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी प्राणवान ही सफल हो पाते तथा कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित कर पाते हैं। कुछ को यह संपदा जन्म-जन्मांतरों की साधना के फलस्वरूप अनायास भी जन्मजात प्राप्त होती है, पर विशिष्ट साधना प्रक्रिया अपनाकर हर कोई प्राण के लहलहाते महासागर में से अपनी झोली भर सकता है और प्राण संपन्न बन सकता है।

तीन प्रकार के प्राणायामों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है—

(१) प्राणाकर्षण प्राणायाम

(२) नाड़ी शोधन प्राणायाम

(३) सूर्य बेधन प्राणायाम

चौथा सोऽहम् प्राणायाम मूलतः हंसयोग की साधना है जिसमें भावना को प्रधानता दी गई है—श्वाँस स्वयं क्रमबद्ध रूप से तदुपरांत चलने लगती है।

(१) प्राणाकर्षण प्राणायाम

विविध प्रयोगों के लिए प्राणायाम की विभिन्न-प्रक्रियाएँ निर्धारित की गई हैं जिनमें से एक है प्राणाकर्षण प्राणायाम। कहा जा चुका है कि इच्छा भावना एवं संकल्प का पुट जुड़ने से ही क्रियाएँ प्राणवान बनती तथा अभीष्ट परिणाम प्रस्तुत करती हैं। प्राणाकर्षण प्राणायाम की सफलता पूरी तरह संकल्प शक्ति की दृढ़ता के ऊपर निर्भर करती है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

प्राणायाम के लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का, ब्रह्ममुहूर्त का है। कारण यह है कि उस समय अंतरिक्ष में प्राणतत्त्व का प्रवाह अत्यंत तीव्र होता है तथा विशिष्ट प्रकार की चैतन्य धाराएँ सूक्ष्म केंद्रों से समूचे ब्रह्मांड में प्रवाहित होती हैं। करने को तो कभी भी प्राणायाम किया जा सकता है, उस पर कोई प्रतिबंध नहीं है, पर

प्रातःकाल जैसा लाभ अन्य समय में नहीं मिल पाता। अस्तु प्राणायाम के लिए सबसे श्रेष्ठ समय प्रातःकाल को ही माना गया है।

प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सहज आसन पर बैठें। दोनों हाथ घुटनों पर हों। मेरुदंड सीधा, आँखें बंद। ध्यान करें कि अखिल आकाश में तेज और शक्ति से ओत-प्रोत प्राणतत्त्व हिलोरें ले रहा है। गर्म भाप के, सूर्य के प्रकाश में चमकती हुई बादलों जैसी शक्ल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है और प्राण उफान के बीच हम निश्चिंत, शांत-चित्त, निर्विकार एवं प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए हैं।

नासिका के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे साँस खींचना आरंभ करें तथा भावना करें कि प्राणतत्त्व उफनते हुए बादलों को हम अपनी साँस द्वारा भीतर खींच रहे हैं। जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसले में, साँप अपने बिल में प्रवेश करता है उसी प्रकार अपने चारों ओर बिखरा हुआ प्राण प्रवाह हमारी नासिका द्वारा साँस के साथ शरीर के भीतर प्रविष्ट हो रहा है और मस्तिष्क, छाती, हृदय, पेट आँतों से लेकर समस्त अंगों में प्रवेश कर जाता है। जब साँस पूरी खींच लें तो उसे भीतर रोकें और भावना करें कि, जो प्राण तत्त्व खींचा गया है, उसे हमारे भीतरी अंग-प्रत्यंग सोख रहे हैं। जिस प्रकार मिट्टी पर पानी डाला जाए तो उसे सोख लेती है उसी प्रकार हमारे अंग सूखी मिट्टी के समान हैं और जल रूपी इस खींचे हुए प्राण को सोखकर अपने अंदर सदा के लिए धारण कर रहे हैं, साथ ही प्राणत्व में सम्मिलित चेतना, तेज, बल, उत्साह, साहस, धैर्य, पराक्रम जैसे अनेक तत्त्व हमारे अंग-प्रत्यंग में स्थिर हो रहे हैं।

जितनी देर साँस आसानी से रोकी जा सके उतनी देर रोकने के बाद धीरे-धीरे साँस बाहर निकाल दें। साथ में यह भावना करें कि प्राण वायु का सारतत्त्व हमारे अंग-प्रत्यंगों द्वारा खींच लिए जाने के बाद अब उसी प्रकार विकार युक्त वायु के माध्यम से बाहर निकाला जा रहा है, जैसा कि मक्खन निकाल लेने के बाद निस्सार दूध हटा दिया जाता है। शरीर, मन और मस्तिष्क के जो विकार थे वे सब इस निकलती हुई साँस के साथ घुल गए हैं और काले धुएँ के समान अनेक दूषणों को लेकर बाहर निकल रहे हैं।

पूरी साँस बाहर निकल जाने के बाद कुछ देर बाहर साँस रोके रहें अर्थात् बिना साँस के रहें और भावना करें कि अंदर के जो दोष बाहर निकाले गए थे उनको वापिस न लौटने देने की दृष्टि से दरवाजा बंद कर दिया गया है और वे बहिष्कृत होकर हमसे बहुत दूर उड़े जा रहे हैं।

यह प्राणाकर्षण की पूरी प्रक्रिया हुई। जिसे आरंभिक चरण में पाँच की संख्या में आरंभ करना चाहिए अर्थात् उपरोक्त प्रक्रिया पाँच बार दुहराई जाए। हर महीने एक प्राणायाम बढ़ाया जा सकता है। यह प्रक्रिया क्रमशः बढ़ाते हुए वर्ष की अवधि में आधे घंटे समय तक पहुँचाई जा सकती है।

(२) नाड़ी शोधन प्राणायाम

आत्मिक प्रगति में मानसिक ही नहीं शारीरिक अवयवों की मलीनता एवं निष्क्रियता भी बाधक बनती है। स्थूल अंग-प्रत्यंगों के परिशोधन के लिए आसन, व्यायाम, बंध, मुद्रा के विविध यौगिक उपचारों का वर्णन योग ग्रंथों में आता है। जो शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सूक्ष्म शरीर नाड़ी गुच्छकों से बना होता है। इन उपचारों की पहुँच उस तक नहीं होती उसके परिष्कार के लिए प्राणायाम की विशिष्ट प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। प्राण प्रक्रिया द्वारा नाड़ी शोधन होने से प्राण संचार की व्यवस्था ठीक बनती तथा मलीनताजन्य निष्क्रियता दूर होती है। फलतः आत्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है, पर यह तथ्य सदा स्मरण रखा जाना चाहिए कि योग ग्रंथों में प्रयुक्त किया गया नाड़ी शब्द शरीर शास्त्रियों द्वारा बताई गई नसों के लिए नहीं—नाड़ियों के संपर्क से चलने वाले प्राण प्रवाह के लिए प्रयुक्त किया गया है।

शरीर शास्त्रियों के अनुसार शारीरिक नाड़ी संस्थान में जब गड़बड़ी होती है तो रक्त संचार में बाधा पहुँचती है तथा कई प्रकार के व्यतिरेक उत्पन्न होते हैं। ऐसे अकड़े नाड़ी तंतु रक्त का दबाव ठीक प्रकार न सह सकने के कारण दर्द से पीड़ित रहते हैं। संसार व्यवस्था में व्यतिरेक से शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग को समुचित परिमाण में रक्त की मात्रा नहीं मिल पाती। फलतः वे भी अशक्तता

की स्थिति में अपना काम भली-भाँति पूरा नहीं कर पाते। शरीर की गंदगी का, विजातीय तत्त्वों का, निष्कासन न हो तो भीतर ही भीतर विषाक्तता बढ़ती है तथा क्रमशः जीवनी शक्ति घटती है। विषाक्तता के बढ़ने तथा जीवनीशक्ति के घटने से ही विविध रोगों का आक्रमण होता है तथा मनुष्य दुर्बल तथा रुग्ण बनता चला जाता है। ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की विद्युत नाड़ियों में गड़बड़ी उत्पन्न होने से भी ठीक ऐसी ही अव्यवस्था उत्पन्न होती है। इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि टेलीफोन अथवा बिजली के तारों में कहीं मध्यवर्ती अवरोध उत्पन्न हो जाने पर विद्युत प्रवाह रुकता तथा सप्लाई बंद हो जाती है। सूक्ष्म नाड़ी मंडल की अव्यवस्था का प्रभाव समूचे सूक्ष्म शरीर-प्राण शरीर के ऊपर पड़ता है। फलस्वरूप अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक व्यतिरेक दिखाई पड़ते हैं जो साधक के लिए चट्टान की भाँति अवरोधक सिद्ध होते हैं।

मन न लगने, जी उचटने, मन के चलायमान होने जैसी कितनी ही शिकायतें अधिकाँश साधक करते रहते हैं। साधना संबंधी विधि-विधानों का ठीक प्रकार पालन करते हुए भी वे आगे नहीं बढ़ पाते। अध्यात्म विज्ञानियों ने उसका प्रमुख कारण बताया है—नाड़ियों की प्राण-संचार व्यवस्था की विकृति। अस्तु यह आवश्यक हो जाता है कि योगाभ्यास आरंभ करते हुए सूक्ष्म नाड़ी संस्थान के परिशोधन का प्रयत्न किया जाए। इसकी उपेक्षा करने से साधना के उच्चस्तरीय सोपानों पर चढ़ पाना तथा अभीष्ट लाभ उठा सकना कठिन पड़ता है। यह सच है कि मस्तिष्क में ध्यान की धारणा से, नादानुसंधान, प्राण संदोह, त्राटक आदि से प्रचंड ऊर्जा उत्पन्न होती है, पर उपरोक्त गड़बड़ी से सूक्ष्म अवयवों में ऊर्जा का समुचित वितरण नहीं हो पाता यह अवरोध सूक्ष्म शरीर को बलिष्ठ बनाने के उद्देश्य से किए गए प्रयत्नों को सफल नहीं होने देता, यही कारण है कि जिस प्रकार शारीरिक परिशोधन में रक्त-संचार प्रणाली को ठीक करने पर महत्त्व दिया जाता है, उसी तरह आत्म विकास की साधनात्मक पद्धतियों में सूक्ष्म नाड़ी संस्थान के परिशोधन को प्राथमिकता दी जाती है।

आत्मवेत्ताओं के अनुसार मेरुदंड के अवस्थित 'आटोनामिक नर्वस सिस्टम' यद्यपि मस्तिष्क के साथ जुड़ा रहता है, पर उसकी मूलभूत गतिविधियाँ स्वसंचालित हैं। मस्तिष्क के साथ उनका संबंध होते हुए भी घनिष्ठता एवं नियंत्रण की स्थिति नगण्य है। शरीरगत महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ मेरुदंड से निकल कर सर्वत्र फैलने वाले स्नायु मंडल से संचालित होती हैं। उनका संचालन सूत्र सुषुम्ना में अवस्थित है—मस्तिष्क में नहीं। इसलिए आत्मविज्ञान में मेरुदंड को भी एक तरह का मस्तिष्क मेरु धुरी 'सेरिब्रो स्पाइनल एक्सिस' कहकर समाधान करना होता है। शरीर विज्ञानी सुषुम्ना को—मेरुदंड के भीतर दोनों ओर, नीचे से ऊपर तक समांतर चलने वाले स्नायु गुच्छकों की शृंखला मानते हैं। यह स्वसंचालित है। इसे अपना क्रिया-कलाप जारी रखने के लिए किसी बाह्य प्रेरणा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस शृंखला का वाम पार्श्व इड़ा, दाहिना पार्श्व पिंगला और मध्यवर्ती समन्वित भाग सुषुम्ना कहा जाता है। ये तीनों ही परस्पर एक-दूसरे से घनिष्ठता पूर्वक संबद्ध हैं, पर उनके भीतर चलने वाले विद्युत प्रवाह के आरोह-अवरोह को देखते हुए उपरोक्त वर्गीकरण किया गया है।

यों तो योग ग्रंथों में ७२ हजार नाड़ियों का उल्लेख किया जाता है, पर उनमें से प्रमुख १४ ही मानी गई हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सुषुम्ना (२) इडा (३) पिंगला (४) गांधारी (५) हस्त जिह्वा (६) कुहू (७) सरस्वती (८) पूषा (६) शंखिनी (१०) यशस्विनी (११) वारुणी (१२) अलंबुसा (१३) विश्वोधरा (१४) पयस्विनी (योग चूड़ामणि उपनिषद्)।

इनमें भी सर्वोपरि तीन हैं—(१) इड़ा (२) पिंगला (३) सुषुम्ना। इन्हें तीन शरीरों का, तीन लोकों का, प्रतिनिधि बताया गया है। इसका नामकरण इस आधार पर किया गया है, उनकी विशेषताएँ, कार्य पद्धति एवं दिशा धाराएँ क्या-क्या हैं ? उनकी सहायता से किन प्रयोजनों की पूर्ति तथा किन सफलताओं की प्राप्ति होती है ? उल्लेख आता है कि समुद्र मंथन से १४ रत्न उपलब्ध हुए थे। इन १४ नाड़ियों को उसी स्तर के अनुदानों के लिए सूक्ष्म जगत से संबंध सूत्र का काम करने वाली विद्युत धाराएँ कहा जा सकता है। इन

प्राण धाराओं को सूक्ष्म शरीर के साथ ही जगत में काम करने वाली चेतन धारा कहा जा सकता है।

शरीरस्थ सूक्ष्म केंद्रिय नाड़ी मंडल मस्तिष्क और मेरुदंड को मिलाकर बना है। इन दोनों को जोड़ने वाला एक वाल्व है जिसे शरीर शास्त्र में मेडुला आब्लाँगेटा कहते हैं। इस संस्थान का श्वाँस-प्रश्वाँस की स्वसंचालित प्रक्रिया से सीधा संबंध है। मेरुदंड में पाई जाने वाली भूरी और सफेद मज्जा में भी वही तत्त्व पाए जाते हैं जो मस्तिष्क में हैं। दोनों में ही ग्रीन तथा व्हाइट मैटर पाए जाते हैं। इस पदार्थ का मेरुदंड से ठीक वैसा ही संबंध है जैसा कि मस्तिष्क का क्रेनियल केविटी से। मस्तिष्क एवं मेरुदंड दोनों में ही सेरेबो स्पाइनल द्रव्य तैरते रहते हैं। मेरुदंड के पोले भाग से होकर ब्रह्म नाड़ी मूलाधार से लेकर सहस्रार तक पहुँचती है। विशेष महत्त्वपूर्ण तथा चेतन तत्त्वों का सूक्ष्म प्राण संचार इसी पोले भाग में होकर होता है।

सूक्ष्म नाड़ी मंडल का संक्षिप्त वर्णन इसलिए करना यहाँ अभीष्ट था, ताकि उसकी उपयोगिता, उपादेयता एवं महत्ता को भलीभाँति समझा जा सके। उनसे समुचित लाभ उठा सकना तभी संभव है जबकि उनमें बहने वाला प्राण-प्रवाह सुव्यवस्थित बना रहे तथा जमी विकृतियों का परिशोधन हो सके। नाड़ियों की मलीनता के कारण आत्मिक प्रगति संभव नहीं ऐसा उल्लेख ग्रंथों में मिलता है—

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्ध कथं भवेत्।।

—योग संध्या

जब तक नाड़ी मल से व्याप्त है तब तक प्राण मध्यम अर्थात् सुषुम्ना मार्ग में नहीं चल सकता किंतु, मल शुद्धि होने पर ही वह सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करेगा और जब तक मल नाड़ियों में विद्यमान है तब तक उन्मनी भाव कहाँ ? पुनः मोक्ष रूप कार्य की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव गच्छति।
प्राणायामः कथं सिद्धस्ततत्त्वज्ञानंकथं भवेत्।।
तस्मादादौनाड़ी शुद्धि प्राणायाम ततोऽभ्यसेत्।

—महायोग विज्ञान

अर्थात् मलों से भरी हुई नाड़ियों में प्राणवायु अवरुद्ध रहता है। ऐसे अवरोधों की स्थिति में प्राणायाम कैसे सफल हो ? इसलिए प्रथम नाड़ी शोधन करना चाहिए पीछे प्राणायाम।

शुद्धिमेति यदा सर्व नाड़ीचक्र मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राण संग्रहणे क्षमः।।

—गोरक्ष पद्धति

मलों से भरे हुए नाड़ी चक्रों की जब शुद्धि हो जाती है तो योगी प्राण संग्रह करने में समर्थ होता है।

प्राणायाम ततः कुर्यान्नित्यं सात्विकयाधिया।
यथा सुषुम्ना नाड़ीस्था मलाः शुद्धि प्रयान्ति च।।

—हठयोग प्रदीपिका

अतः सात्विक बुद्धि से नित्य प्रति प्राणायाम करना चाहिए जिससे सुषुम्नास्थित मल की शुद्धि होती जाए।

यदा तु नाडी शुद्धिः स्याद् योगिनःस्तत्त्वदर्शिनः।
तदा विघ्नस्तदोशश्च भवेदारंभः संभवः।।

—शिव संहिता

जब नाड़ी शुद्धि होगी तब दोष शुद्ध होगा। उसी स्थिति में योग का आरंभ संभव है।

यदा तु नाडी शुद्धिस्यातथार्चिन्हानिवाह्यतः।
कायस्तु कृशता कांतिस्तदा जायेत निश्चितम्।।

—हठयोग प्रदीपिका

जिस समय नाड़ियों की शुद्धि होती है उस समय के चिन्ह हैं, शरीर की कृशता और क्रांति में निश्चित रूप से वृद्धि होना।

नाड़ी शोधन प्राणायाम की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—

प्रातःकाल पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठें। पालथी मारकर सुखासन, पद्मासन अथवा सिद्धासन में अपने अभ्यास के अनुरूप बैठा जा सकता है। कमर सीधी हो तथा नेत्र अधखुले।

दाहिने नासिका छिद्र को बंद रखें। बायें से साँस खींचें और उसे धीरे-धीरे नाभिचक्र तक ले जाएँ। ध्यान करें कि नाभि स्थान में पूर्णिमा के पूर्ण चंद्रमा के समान पीतवर्ण शीतल प्रकाश विद्यमान है। खींचा हुआ साँस उसे स्पर्श कर रहा है।

जितने समय में साँस खींचा गया था उतने ही समय तक भीतर रोकें और ध्यान करते रहें कि नाभि चक्र में स्थित पूर्ण चंद्र के प्रकाश को खींचा हुआ श्वाँस स्पर्श करके उसे शीतल और प्रकाशवान बना रहा है।

जिस नथुने से साँस खींचा था उसी बायें छिद्र से ही बाहर निकालें और ध्यान करें कि नाभिचक्र के चंद्रमा को छूकर वापिस लौटने वाली प्रकाशवान एवं शीतल वायु इड़ा नाड़ी की छिद्र नलिकाओं को शीतल एवं प्रकाशवान बनाती हुई वापिस लौट रही है। साँस छोड़ने की गति अत्यंत धीमी हो। कुछ देर साँस बाहर रोकें, बिना श्वाँस के रहें। बायें से ही इस क्रिया को तीन बार दुहरायें।

जिस प्रकार बायें नथूने से पूरक, कुंभक व रेचक एवं बाह्य कुंभक किया था, उसी प्रकार दाहिने नथूने से भी करें। नाभिचक्र में चंद्रमा के स्थान पर इस बार सूर्य का ध्यान कीजिए तथा साँस छोड़ते समय भावना कीजिए कि नाभि स्थित सूर्य को छूकर वापिस लौटने वाली वायु श्वाँस नली के भीतर उष्णता और प्रकाश उत्पन्न करती हुई लौट रही है। बाँए नासिका के छिद्र को बंद रखकर दाहिने से भी इस क्रिया को तीन बार करें।

अब नासिका के दोनों छिद्र खोल दीजिए। दोनों से सहज क्रम से लंबा श्वाँस खींचिए और थोड़ी देर भीतर रोककर तथा मुँह खोलकर साँस बाहर निकाल दीजिए। यह क्रिया मात्र एक बार ही करनी चाहिए।

इस तरह तीन बार बाँए नासिका से साँस खींचते और छोड़ते हुए नाभिचक्र में चंद्रमा का शीतल ध्यान, तीन बार दाहिने नासिका छिद्र से साँस खींचते-छोड़ते हुए सूर्य के उष्ण प्रकाश का ध्यान, एक बार दोनों छिद्रों से साँस खींचते हुए मुख से साँस निकालने की क्रिया, इन सबसे मिलकर एक पूर्ण नाड़ी शोधन प्राणायाम बनता है।

आरंभ तीन प्राणायाम से करना चाहिए, हर माह एक-एक क्रमशः बढ़ाते हुए सात माह में दस तक इसकी संख्या पहुँचाई जा सकती है।

(३). सूर्य बेधन प्राणायाम

शक्ति आयामों में विभिन्न शक्तियों की चर्चा की जाती है। पदार्थ की शक्ति, विद्युत शक्ति, चुंबकीय शक्ति, गुरुत्वाकर्षण शक्ति, शारीरिक शक्ति आदि का एक और भी आयाम है जो इनकी तुलना में कहीं अधिक सूक्ष्म पर अधिक सामर्थ्यवान है, प्राण की शक्ति। जीव चेतना में प्राण की एक सीमित मात्रा भरी हुई है, जिसके द्वारा वह जीवन का दैनिक व्यापार चलाता है। ब्रह्मांड में प्राण शक्ति प्रचुर परिमाण में संव्याप्त है। ब्रह्मांड एक ऐसा विराट् सागर है जिसमें प्राणतत्त्व हिलोरे ले रहा है। पिंड सत्ता—जीव सत्ता में समाहित प्राण तत्त्व को आत्माग्नि कहा जा सकता है और ब्रह्मांड में संव्याप्त प्राण को ब्रह्माग्नि। आत्माग्नि लघु है, ब्रह्माग्नि विभु। एक बूंद है, दूसरा सागर। इस प्रकार मूलतः एक होते हुए भी भेद के कारण उसके दो रूप बन गए। जब वर्षा होती है तालाब वह विपुल जल राशि अपने गर्भ में भर कर परिपूर्ण हो जाता है। वर्षा का यह अनुदान न मिलने पर तालाब सूखता और घटता जाता है। पानी में मलीनता भी बढ़ती है। इसलिए तालाब को स्वच्छ रखने के लिए नए वर्षा जल की आवश्यकता पड़ती है। ठीक इसी प्रकार आत्माग्नि में ब्रह्माग्नि का अनुदान सतत् पहुँचते रहना आवश्यक है। जिस साधना प्रक्रिया द्वारा इस प्रयोजन की आपूर्ति होती है उसे प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम अर्थात् प्राण का आयाम जोड़ने की, प्राण तत्त्व संबर्धन की, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें जीवात्मा का क्षुद्र प्राण—ब्रह्म चेतना के महाप्राण से जुड़कर उसी के तुल्य बन जाए।

योग शास्त्रों में व्यक्ति-प्राण और ब्रह्म-प्राण की एकरूपता के संबंध में इस प्रकार उल्लेख आता है—

प्राणावै द्विदेवत्याः एक मात्रागृह्यते। तस्मात् प्राणा एक नामांता द्विमात्र हूयंते तस्मात्प्राण द्वंद्वम्।

—ऐतरेयो २।२७

अर्थात् प्राण एक है, पर वह दो देवताओं में, दो पात्रों में भरा हुआ है।

शरीर शास्त्र की दृष्टि से यों तो 'डीप ब्रीदिंग' गहरी साँस लेने को आरोग्य वर्धक बताया गया है। इससे फेफड़ों को अधिक ऑक्सीजन की मात्रा मिलती है जो स्वास्थ्य संतुलन एवं संबर्धन में सहायक सिद्धि होती है, पर अध्यात्म विज्ञान में जिस प्राणायाम की चर्चा की जाती है वह शरीर शास्त्रियों की प्रचलित डीप ब्रीदिंग से भिन्न होती है। गहरी साँस से अतिरिक्त ऑक्सीजन मिलने और स्वास्थ्य संबर्धन का मात्र शारीरिक स्थूल प्रयोजन पूरा होता है, पर यौगिक प्राणायामों में चैतन्य प्राण तत्त्व का महत्त्वपूर्ण लाभ साधक को मिलता है। उल्लेखनीय है कि ऑक्सीजन और प्राणतत्त्व एक नहीं है। वायु में, निखिल ब्रह्मांड में दूध घी की भाँति प्राणतत्त्व घुला-मिला तो अवश्य है वह ऑक्सीजन स्वयं प्राण नहीं है, प्राण का संवाहक है। प्राणायाम प्रक्रिया में ब्रह्मांडव्यापी महाप्राण के लहलहाते सागर में से अभीष्ट परिणाम में प्राणतत्त्व खींचकर आत्म प्राण तक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार आंतरिक प्राण संपदा की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है जिससे भौतिक सफलताओं और आत्मिक विभूतियों का अवरुद्ध मार्ग खुलता है।

मानवी सत्ता में शक्ति का भंडागार बीज रूप में विद्यमान है, जिसे कुंडलिनी महाशक्ति के रूप में जाना जाता है। परमाणु के नाभिक में प्रचंड शक्ति भरी पड़ी है, पर वह तब ही दिखाई पड़ती और उपयोग में तभी आती है जब एक निश्चित वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाकर नाभिकीय विखंडन कराया जाता है। यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल है और खर्चीली भी। कुंडलिनी महाशक्ति जिसे सरपेंटाइन पावन—वाइटल फोर्स आदि के नाम से जाना जाता है, हर मनुष्य में सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। दबे हुए खजाने की भाँति उस शक्ति का लाभ नहीं उठा पाता। उस महाशक्ति को एक नगण्य चिनगारी, काम-उभार के रूप में दिखाई पड़ती तथा विपरीत लिंगों के प्रति आकर्षण पैदा करती, प्रजनन के लिए प्रेरणा देती है। शक्ति के भंडार का सामान्य मनुष्य कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाता। प्राणायाम की विशिष्ट प्रक्रिया उस महाशक्ति के जागरण में विशेष सहयोग करती

है। कुंडलिनी जागरण के लिए प्राणशक्ति का प्रचंड आघात आवश्यक होता है। शरीर में विद्यमान प्राण की मात्रा इस प्रयोजन की पूर्ति नहीं कर पाती। निखिल ब्रह्मांड में संव्याप्त प्राण तत्त्व को आकर्षित करना तथा अपने भीतर भरना पड़ता है। सूर्य वेधन प्राणायाम इस प्रयोजन के लिए सर्वाधिक सहायक सिद्ध होता है। कुंडलिनी जागरण की साधना में सूर्यवेधन स्तर के प्राणायाम की ही आवश्यकता पड़ती है।

प्राण के प्रहार से जीवाग्नि के उद्दीपन, प्रज्वलन का उल्लेख साधना ग्रंथों में अनेक स्थानों पर हुआ है यह वही अग्नि है जिसे योगाग्नि, प्राण ऊर्जा, जीवनी शक्ति अथवा कुंडलिनी कहते हैं। अग्नि में ऐसा ही ईंधन डाला जाता है जिसमें अग्नि तत्त्व की प्रधानता वाले रासायनिक पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं। कुंडलिनी प्राणाग्नि है उसमें तत्त्वों का ईंधन डालने से ही उद्दीपन होता है। सूर्यवेधन प्राणायाम द्वारा इड़ा पिंगला के माध्यम से अंतरिक्ष से खींचकर लाया गया प्राणतत्त्व मूलाधार में अवस्थित-चिनगारी जैसी प्रसुप्त अग्नि तक पहुँचाया जाता है तो वह भड़कती है और जाज्वल्यमान लपटों के रूप में सारी सत्ता को अग्निमय बनाती है। अग्नि का उल्लेख शास्त्रों में मूलाधार स्थित प्राण ऊर्जा के लिए ही हुआ है—

आदेहम ध्यकटयंतमग्निस्थानमुदाहृदम।
तत्र सिन्धूर वर्णोऽग्निज्वलनदशपंच च।।

—त्रिशिखोपनिषद्

अर्थात्—कटि के निम्न भाग में अग्नि स्थापना वह सिंदूर के रंग का है। उसमें पंद्रह घड़ी प्राण को रोककर अग्नि की साधना करनी चाहिए।

नामेस्तिर्यग धोर्ध्वं कुंडलिनी स्थानम्। अष्ट प्रकृति रुपाऽष्टधा कुंडलीकृता। कुंडलिनी शक्तिर्भवति। यथा वद्वाय संचारं जलान्नदीनि परितः स्कंधपाश्वष निरुध्यैनं मुखेनैष समावेष्ट्य ब्रह्मरंध्र योगकालेऽपापेनाग्निना च स्फुरति।।

—शांडिल्योपनिषद्

अर्थात्—नाभि के नीचे कुंडलिनी का निवास है। यह आठ प्रकृति वाली है। इसके आठ कुंडल हैं। प्राण वायु को यथावत् करती

है। अन्न और जल को व्यवस्थित करती है। मुख तथा ब्रह्मरंध्र की अग्नि को प्रकाशित करती है।

मूलाधारस्य ब्रह्मयात्म तेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुंडलाख्या प्राणाकाश तेजसो।।

—रुद्र तंत्र

अर्थात्—मूलाधार में निवास करने वाली आत्म तेजरूपी अग्नि, जीव शक्ति है प्राणरूपी आकाश में प्राणवान कुंडलिनी ही है।

प्राण का मूलाधार स्थित जीवाग्नि का प्रहार तथा उद्दीपन यही है—सूर्यवेधन प्राणायाम का लक्ष्य। सूर्यवेधन प्राणायाम की प्रक्रिया इस प्रकार है—

किसी शांत एकांत स्थान में प्रातःकाल अथवा सायंकाल की वेला में स्थिर चित्त होकर बैठना चाहिए। आसन सहज हो, मेरुदंड सीधा, नेत्र अधखुले, घुटने पर दोनों हाथ, यह प्राण मुद्रा कहलाती है। सूर्यवेधन प्राणायाम के लिए इसी मुद्रा में बैठना चाहिए।

दाएँ नासिका का छिद्र बंद करके बाएँ से धीरे-धीरे श्वाँस खींचना चाहिए। भावना यह हो कि वायु के साथ प्राण ऊर्जा को प्रचुर मात्रा मिली हुई है। वह प्राण ऊर्जा को सुषुम्ना मार्ग के ऋण विद्युत प्रवाह इड़ा धारा द्वारा मूलाधार तक पहुँचाना—वहाँ अब स्थित प्रसुप्त चिनगारी को झकजोरना, थपथपाना, जाग्रत करना—यह सूर्यवेधन प्राणायाम का पूर्वार्ध है। उत्तरार्ध में प्राण को पिंगला (मेरुदंड के दक्षिण मार्ग के धन विद्युत प्रवाह) में से होकर वापिस लाया जाता है। जाते समय अंतरिक्ष स्थित प्राण शीतल होता है—ऋण धारा भी शीतल मानी जाती है। इसलिए इड़ा को, पूरक को, चंद्रावत कहा जाता है। इड़ा को चंद्र नाड़ी कहने से यही प्रयोजन है। लौटते समय अग्नि उद्दीपन-प्राण प्रहार की संघर्ष प्रक्रिया से ऊष्मा बढ़ती और प्राण में सम्मिलित होती है। लौटने का पिंगला मार्ग धन विद्युत का क्षेत्र होने से उष्ण माना गया है। दोनों ही कारणों से प्राण वायु उष्ण रहता है, इसलिए उसे सूर्य की उपमा दी गई है। इड़ा और पिंगला सूर्य है। पूरक चंद्र और रेचक सूर्य है। योग ग्रंथों में ऐसा ही वर्णन मिलता है।

साधना में क्रिया-कृत्यों की तुलना में भावना एवं संकल्प का महत्त्व अधिक है। साधक को इसके अनुरूप ही लाभ मिलता है। श्वाँस द्वारा खींचे हुए प्राण को मेरुदंड मार्ग से मूलाधार चक्र तक पहुँचाने का संकल्प दृढ़ता पूर्वक करना पड़ता है। यह मान्यता परिपक्व करनी पड़ती है कि निश्चित रूप से अंतरिक्ष से खींचा गया और श्वाँस द्वारा मेरुदंड मार्ग से प्रेरित किया गया प्राण मूलाधार तक पहुँचता है और प्रसुप्त कुंडलिनी शक्ति को, प्राणाग्नि को, अपने प्रचंड आघातों द्वारा जगा रहा है। प्रहार के उपरांत प्राण को सूर्य नाड़ी पिंगला द्वारा वापिस लाने तथा सूक्ष्म सत्ता को प्रकाशित, आलोकित करने की भावना परिपक्व करनी पड़ती है।

दूसरी बार इससे उलटे क्रम में अभ्यास करना पड़ता है अर्थात् दाहिने नथूने से प्राण को खींचना और बाईं ओर से लौटाना होता है। इस बार पिंगला से प्राण प्रवेश कराना तथा इड़ा से लौटना पड़ता है। मूलाधार पर प्राण तथा प्राणोद्दीपन की भावना पूर्ववत् करनी पड़ती है। एक बार इड़ा से लौटाना यही है सूर्यबेधन प्राणायाम का संक्षिप्त विधि-विधान। कहीं-कहीं यौगिक ग्रंथों में सूर्यबेधन प्राणायाम को ही अनुलोम-विलोम प्राणायाम भी कहा गया। लोम कहते हैं सीधे को, विलोम उलटे को। एक बार सीधा एक बार उलटा। फिर उलटा, फिर सीधा। यह सीधा चक्र ही लोम विलोम कहलाता है। लोम-विलोम की पूरी प्रक्रिया से एक पूरा सूर्यबेधन प्राणायाम होता है।

कुंडलिनी महाशक्ति के जागरण के लिए प्राण ऊर्जा की प्रचुर परिमाण में आवश्यकता पड़ती है। यह प्रयोजन सूर्यबेधन द्वारा पूरा होता है। प्राण ऊर्जा का अभिवर्धन साधक की भौतिक और आध्यात्मिक सफलताओं का मार्ग प्रशस्त करता है। सूर्यबेधन की प्रक्रिया सामान्य दीखते हुए असामान्य परिणाम प्रस्तुत करने वाली है।

(४) प्राणयोग का उच्चस्तरीय प्रयोग सोऽहम् साधना

उच्चस्तरीय प्राणायामों में सोऽहम् साधना को सर्वोपरि माना जाता है। यह मूलतः ध्यानयोग की साधना है एवं उच्चस्तरीय प्राणयोग भी इसे कहा जाता है। इस साधना का प्राणायाम प्रक्रिया एवं

प्राणयोग की प्राणाकर्षण साधना से अलग व विशिष्ट माना जाना चाहिए।

सोऽहम् साधना भावोत्कर्ष व शक्ति अवतरण की साधन प्रक्रिया है। इस साधना के साथ जुड़ा संकल्प चेतना को उच्चतम स्तर तक उछाल देने में जीव-ब्रह्म का समन्वय संयोग करा सकने में समर्थ होता है। इतनी इस स्तर की, भाव में संवेदना और किसी प्राणायाम में नहीं। इसलिए इसे प्राणयोग नाम न देकर हंसयोग भी कहते हैं एवं इसे एक स्वतंत्र शाखा के रूप में महत्त्व दिया जाता है।' 'अजपा जप' अथवा प्राण गायत्री भी कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि श्वाँस के शरीर में प्रवेश करते समय 'सो' जैसी और बाहर निकलते समय 'हम' जैसी अत्यंत सूक्ष्म ध्वनि होती है। इस प्रवाह को सूक्ष्म श्रवण शक्ति के सहारे अंतः भूमिका में अनुभव करना, वही संक्षेप में सोऽहम् साधना का विधान है। चूंकि ध्वनि सूक्ष्म है, इसलिए उसे अपने सूक्ष्म शरीर में रहने वाली सूक्ष्म कर्णेंद्रियों द्वारा, शब्द तन्मात्रा के रूप में सुना जा सकता है।

सोऽहम् साधना की शास्त्रकारों ने स्थान-स्थान पर विवेचना करते हुए प्रशस्ति की है व इसे कुंडलिनी योग की साधना का भी एक अनिवार्य अंग माना है।

प्रपंच तंत्र कहता है—

देहो देवालयः प्राक्तो जीवो नाम सदाशिवः।
त्यजेद् ज्ञानं निर्माल्यं सोहं भावेन पूज्येत्।।

अर्थात्—देह देवालय है जिसमें जीव रूप में शिव विराजमान है। इसकी पूजा वस्तुओं से नहीं, सोऽहम् साधना से करनी चाहिए।

योग रसायनम् में शास्त्रकार लिखते हैं—

हंसा हंसोहमित्येवं पुनरावर्तन क्रमात्।
सोहं सोहं भवेन्नूनमिति योग विदो विदुः।।

अर्थात्—हंसो, हंसोह इस पुनरावृत्ति क्रम से जप करते रहने पर शीघ्र ही सोऽहं-सोऽहं ऐसा जप होने लगता है, योगवेत्ता इसे जानते हैं।

प्रश्न उठता है कि यह सोऽहम् की प्रक्रिया ऐसा क्या परिवर्तन शरीर में लाती है जो इसे उच्चस्तरीय प्राणयोग में गिना जाता है सोऽहम् को तत्ववेत्ता अनाहत शब्द कहते हैं। आहत वे हैं जो कहीं चोट लगने से उत्पन्न हुए हों। जबकि अनाहत बिना किसी आघात के उत्पन्न होते हैं। नादयोग में सुनाई देने वाले शब्द प्रकृति के अंतराल की उथल-पुथल व पंचतत्त्वों की काया के भीतर की गतिविधि हलचलों के होने से आहत माने जाते हैं। जप भी आहत हैं क्योंकि मुख से जो शब्द उत्पन्न होते हैं। वे वाणी संस्थान के अवयवों की गतिविधियों से उत्पन्न होते हैं। सोऽहम् अनाहत है। यह ब्राह्मी चेतना की गतिविधियों का सूक्ष्म श्रवण है। इसीलिए इससे अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है।

वायु का प्रवाह जब तीव्र वेग से छोटे छिद्रों में होकर होता है तो घर्षण से ध्वनि प्रवाह होता है। बाँसुरी में इसी सिद्धांत के आधार पर स्वर लहरियाँ उत्पन्न होती हैं। बाँसों में विद्यमान छेदों से जब हवा निकलती है तो जंगलों में बाँसुरी जैसी ध्वनि निकलती सुनाई देती है। वृक्षों से टकराकर जब तेज गति से हवा चलती है तो घर्षण प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसी ही ध्वनि सुनाई देती है। यहाँ यह तुलना इस कारण की गई कि नासिका छिद्र भी बाँसुरी के छेदों के समान है। इस सीमित परिधि से होकर जब वायु भीतर प्रवेश करती है तो सूक्ष्म ध्वनि प्रवाह इस घर्षण से उत्पन्न होता है। गहरी और मंद गति से ली गई साँस से नासिका छिद्रों से टकराकर उत्पन्न होने वाला ध्वनि प्रवाह और भी अधिक तीव्र हो जाता है, पर इसे कर्णेंद्रियों की सूक्ष्म चेतना में ही अधिक अनुभव किया जा सकता।

चित्त को श्वसन क्रिया पर एकाग्र कर भावना को इस स्तर का बनाया जाता है कि श्वाँस लेते समय 'सो' शब्द के ध्वनि प्रवाह की मंद अनुभूति होने लगे। साँस छोड़ते समय यह मान्यता बनानी चाहिए कि 'हम ध्वनि प्रवाह निःसृत हो रहा है। धीरे-धीरे चित्त एकाग्र करते-करते यह अनुभूति तीव्र होती चली जाती है और एक अभूतपूर्व आनंद की प्राप्ति इसमें होने लगती है। 'सो' का तात्पर्य परमात्मा और 'हम्' का अर्थ है जीव चेतना। निखिल विश्व ब्रह्मांड में संव्याप्त महाप्राण 'सो' की ध्वनि के साथ नासिका द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश

करता है और हमारे अंग-प्रत्यंग में—जीव कोष तंतु जाल तथा नाड़ी—नाड़िकाओं में प्रविष्ट हो उसको अपने संपर्क, संसर्ग का लाभ प्रदान करता है। यहाँ प्राणायाम के साथ यह ध्यान परक अनुभूति अनिवार्य है। 'हम' शब्द के साथ विश्वास द्वारा यह सोचा जाए कि जीव ने अपनेपन का भाव छोड़ दिया तथा काय-कलेवर से अपना आधिपत्य हटाकर उसने महाप्राण को स्थान दे दिया। प्रकारांतर से यह परमात्म सत्ता का अपने शरीर और मनःक्षेत्र पर अधिकार स्थापित हो जाने की धारणा है।

तत्त्वदर्शी ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा के गहन अंतराल में उसकी आत्मबोध प्रज्ञा जो उसके वास्तविक 'स्व' का स्वरूप है, जाग्रत अवस्था में रहती हैं और उसी की स्फुरणा से सोऽहम् का आत्मबोध अजपा जाप बनकर स्वसंचालित रहता है। सोऽहम् का भाव स्थापित हो जाने का अर्थ है—आत्मा-परमात्मा का एकीकरण—अद्वैत की स्थापना। तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म—शिवोहम, सच्चिदानंदोहम्, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोमि आदि विवेचनों में इसी वेदांत दर्शन का प्रतिपादन है।

सोऽहम् उपासना की सार्थकता इसी में है कि जीव अपने आपको भ्रम जंजाल से मुक्त करे। यह मात्र प्राणायाम व ध्वनि की अनुभूति मात्र न बनकर रह जाए। स्वार्थवादी संकीर्णता, काम, क्रोध-लोभ, मोह आदि भवबंधनों से यह जकड़ी जीवात्मा दिकभ्रांत बनी रहती है। इस स्थिति को ही जीव भाव या जीव भूमिका कहा जाता है। इस भ्रम-जंजाल भरे जीव भाव को हटा दिया तो ईश्वर का विशुद्ध अंश ही अविनाशी निश्छल आत्मा के रूप में शेष रह जाता है। अपने काय-कलेवर के कण-कण पर परमात्मा के शासन की स्थापना ही इस साधना का चरम लक्ष्य है। परमात्मा अर्थात् आदर्शों का समुच्चय, जीवात्मा अर्थात् उसी का एक अंश जो भटकाव में लिप्त है, पर मार्ग नहीं खोज पा रहा। सोऽहम् की श्वाँस-प्रश्वाँस प्रक्रिया के माध्यम से सो और हम् की ध्वनि के सहारे इसी भाव चेतना को जाग्रत किया जाता है कि अपना स्वरूप ही बदल रहा है—समूचा काया-कल्प हो रहा है। अब शरीर और मन पर से लोभ, मोह का, वासना-तृष्णा का आधिपत्य समाप्त हो रहा है। उसके स्थान

पर उत्कृष्ट चिंतन एवं आदर्श कर्तृत्व, दूरदर्शी दृष्टिकोण एवं व्यवहार में सज्जनता, परमार्थ परायणता के रूप में ब्रह्मसत्ता की स्थापना हो रही है। सोऽहम् साधना इसी अनुभूति के स्तर को क्रमशः प्रगाढ़ करती चली जाती है और अपना अंतःकरण यह अनुभव करने लगता है कि अब उस पर असुरता का नियंत्रण नहीं रहा। समग्र संचालन श्रेष्ठता की प्रतीक आदर्शों की प्रतिमा-देवसत्ता द्वारा किया जा रहा है।

इस साधना में क्रिया उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी कि उससे जुड़ा ध्यान। पंद्रह मिनट सोऽहम् जप के उपरांत आधे घंटे यह चिंतन किया जाए कि साँस में घुले परम पिता परमेश्वर अपनी समस्त विभूतियों, गुण संपदाओं के साथ काया के रोम-रोम में प्रवेश कर रहे हैं। मात्र आने जाने का ही क्रम यह नहीं है वरन् प्रत्येक अंग अवयव पर अपनी प्राण सत्ता के अंश-अंश पर ईश्वरीय सत्ता का सघन आधिपत्य स्थापित हो रहा है, यह भावना की जानी चाहिए। एक-एक करके भाव चित्र हर अंग के मानस पटल पर लाए जाएँ व यह कल्पना की जाए कि ईश्वर के ही एक अंग हो गए। अब हमारी कर्मेंद्रियाँ व ज्ञानेंद्रियाँ वही करेंगी जो ईश्वरीय अनुशासन चाहता है। स्वादेंद्रियों, वाणी, जननेंद्रियों, हाथ-पाँव, मस्तिष्क, बुद्धि, चित्त किसी से भी ऐसी गतिविधि नहीं होगी जो हम नहीं चाहते हैं, पर ईश्वरीय सत्ता नहीं चाहती। इस ध्यान प्रक्रिया में आस्था इतनी प्रगाढ़ होनी चाहिए कि यह मात्र मनो-विनोद न रहकर क्रिया में परिणति हो जाए और तब तक हमें चैन न मिले। सार्थक भी वे ही विचार होते हैं जो क्रिया रूप में बदल सकने योग्य प्रखरता से भरे हों।

सोऽहम् साधना का पूर्वार्ध इस प्रकार अपने काय-कलेवर, जीव चेतना पर महाप्राण की सत्ता स्थापना के चिंतन से जुड़ा हुआ है। इसका उत्तरार्ध है पाप निष्कासन। शरीर से अवाँछनीय इंद्रिय लिप्साओं—दुष्प्रवृत्तियों का निवारण ही इस चिंतन का लक्ष्य हो व इसमें प्रगाढ़ भावनाएँ जुड़ी हों। हर घड़ी यह तथ्य प्रत्यक्षतः मानस पटल पर घटित होते देखा जाए कि समस्त दुर्भावनाएँ व निकृष्टताएँ हमारे अंतः से पलायन कर रही हैं। जैसे सूर्य का प्रकाश चहुँ ओर व्याप्त होते ही अंधकार मिट्ता चला जाता है उसी प्रकार ब्रह्म सत्ता

के दिव्य प्रकाश से हमारे अंतः के कषाय मिटते चले जा रहे हैं। जब इनके बाहर निकल पड़ने से प्राप्त होने वाला हल्कापन—उल्लास हमें प्रत्यक्ष अनुभव होने लगे तो समझना चाहिए उत्तरार्ध सफल रहा।

हम ईश्वर के अंश हैं व जीवात्मा अविनाशी है, यह हम निरंतर शास्त्र वचनों में पढ़ते-सुनते रहते हैं, पर जब यह मान्यता अंतःकरण की गहराई में उतर जाती है, गहन आस्था बनकर अंतःप्रेरणा बन जाती है तो इस 'मोटिव फोर्म' द्वारा धकेले हमारे मस्तिष्क व शरीर रूपी सेवकों को उत्कृष्ट कार्यों में संलग्न होना ही पड़ता है। सोऽहम् का तत्त्वज्ञान अंतरात्मा की प्रखर श्रद्धा के रूप में विकसित फलित हो सके तो इसके सत्परिणाम सुनिश्चित रूप से दिव्य क्रिया कलापों, देवदूतों-ऋषि-महामानव स्तर के चिंतन के रूप में उभर कर सामने आते हैं। उसे अंतरात्मा का प्रत्यक्ष काया-कल्प कहना चाहिए। तब व्यक्ति बाध्य हो जाता है, वही सोचने के लिए जो ईश्वर सारे विश्व के जीवों के विषय में सोचता है, वही करना होगा जो ईश्वर करता है।

सामान्य प्राणायाम तो मात्र स्वास्थ्य संबर्धन एवं मनोगत विकास का प्रयोजन भरा पूरा कर पाते हैं। उन्हें ही समग्र साधना मान लेना गलत है। जब संकल्प शक्ति का प्रखर प्रयोग उसमें जुड़ जाता है तो वह प्राणयोग की प्रारंभिक स्थिति के रूप में विकसित हो जाता है। इससे भावनात्मक परिष्कार—आत्मबल में वृद्धि, कितनी ही अलौकिक विशेषताओं के जागरण में सहायता मिलती है। सबसे ऊँची स्थिति सोऽहम् साधना की है जिसमें आत्म चेतना का मंथन किया जाता है व ईश्वरीय सत्ता के प्राण तत्त्व को इस काय-कलेवर में समाविष्ट कर स्वयं को भी उसके समान महान बनाने की भावना की जाती है।

❑❑

परिशिष्ट

(अ) प्राणायाम संबंधी सामान्य नियम

(१) प्राणायाम करने का स्थान स्वच्छ, हवादार, शांतिमय और पवित्र हो। प्राकृतिक स्थान, नदी, सरोवर का तट, पहाड़ आदि उत्तम हैं। फिर भी स्वच्छ हवादार कमरे या छत पर भी काम चलाया जा सकता है। दुर्गंध सीलन, धुआँ धूल युक्त स्थान पर प्राणायाम करने से हानि भी हो सकती है।

(२) ध्यानात्मक आसन, सिद्धासन अथवा योगासन अथवा सुखासन अथवा वज्रासन आदि की स्थिति में बैठकर प्राणायाम करना चाहिए। खासकर इस बात का ध्यान रखा जाए कि मेरुदंड, गर्दन,
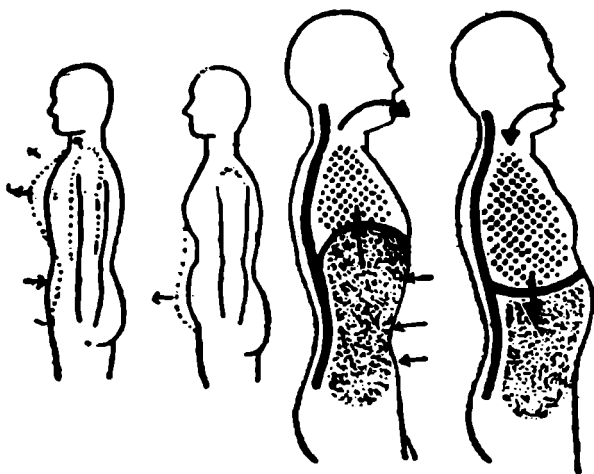
कमर, छाती को सीधा रखें। इससे ही अनुकूल लाभ मिल सकेंगे।

(३) प्राणायाम से पर्याप्त लाभ उठाने के लिए आहार-विहार का संतुलन व्यवस्थित जीवन क्रम होना आवश्यक है, जीवन की मर्यादाओं का व्यतिरेक करने पर किसी भी अभ्यास से लाभ नहीं मिलता।

(४) प्राणायाम के लिए प्रातः-सायं का समय उपयुक्त है। भोजन करने के ४ घंटे के बाद ही प्राणायाम किया जाए। खाली पेट प्राणायाम करना चाहिए, पर बहुत ज्यादा भूख लग रही हो तब भी प्राणायाम नहीं करना चाहिए। व्यायाम के रूप में आरंभिक अभ्यासों में कोई भय नहीं।
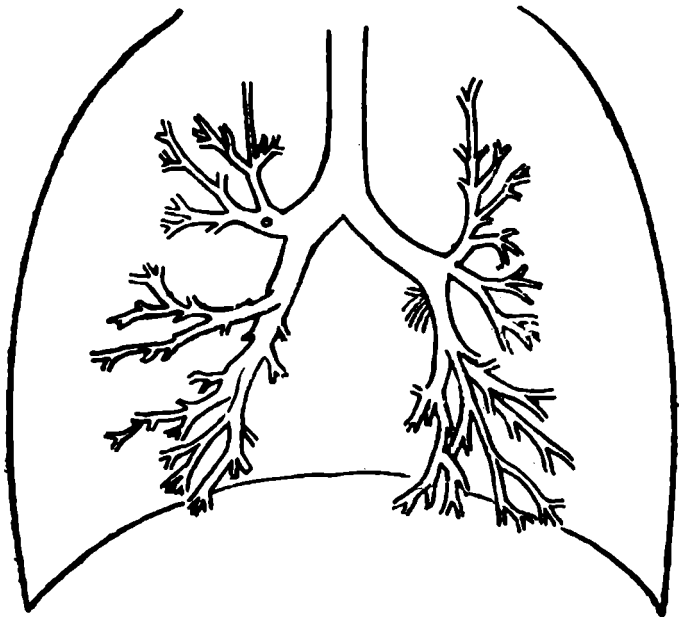
(५) प्राणायाम के अभ्यास करने वाले का भोजन हल्का सात्विक स्निग्ध, पेय आदि हैं। इस तरह रोटी, साग, दूध, घी, दलिया, चावल, खिचड़ी, फल (सूखे मेवे भी) आदि उत्तम हैं।

(६) किसी तीव्र रोग ज्वरादि की स्थिति में गर्भवती स्त्रियों को वेगयुक्त प्राणायाम का अभ्यास करना वर्जित है। इससे हानि की संभावना रहती है।

(७) अशक्त और निर्बल शरीर के लोगों को मस्त्रिका, अग्नि-प्रदीप्त, सर्वांग स्तंभ आदि प्राणायाम बिना पर्याप्त मार्ग दर्शन के नहीं करना चाहिए।

(८) शीतली बिना सीत्कारी, शीतकार, कंठ वायु, उदर पूरक, प्लावनी आदि प्राणायाम बिना प्रकृति का निर्धारण हुए स्वतः आरंभ न करें।

(९) शक्ति वर्धन एवं भारी काम करने के प्राणायामों में भोजन विशेष रूप से पौष्टिक, स्निग्ध और सुपाच्य लेना चाहिए।

(१०) प्राणायाम के अभ्यासी को सदैव नाक से श्वाँस लेने की आदत डालनी चाहिए, मुँह से नहीं।

(११) ब्रह्मचर्य के पालन का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

(१२) पेट को हल्का और मल रहित रखने का प्रयत्न करना आवश्यक है। इससे प्राणायाम के अभ्यास में सुगमता और सिद्धि मिलती है।

(१३) प्राणायाम के अभ्यास के बाद १५-२० मिनट या जितना बने विश्राम अवश्य ले लेना चाहिए।

(१४) तीनों बंधनों को आवश्यकतानुसार ही मार्ग दर्शन के बाद लगाना चाहिए।

(१५) प्राणायाम करते समय छाती को फुलाना चाहिए। इससे फेफड़े और अवयवों को विकास के लिए काफी सहायता मिल जाती है। सही ढंग से बैठने या लोटने से पर्याप्त लाभ नहीं मिलता।

(ब) श्वसन क्रिया में नासिका का महत्त्व

कई लोग मुँह से साँस लेते हैं, किंतु यह आदत अस्वाभाविक, अप्राकृतिक होने से अहितकर होती है। श्वाँस लेने के लिए प्रकृति ने नासापुटों का निर्माण किया है। प्राणायाम को नाक से श्वाँस लेने का अभ्यासी होना आवश्यक है। (देखें चित्र)

(१) मनुष्य के श्वाँस-प्रश्वाँस संस्थान, फुफ्फुस, श्वाँस नलिकाएँ आदि अत्यंत ही कोमल और मूल्यवान होते हैं। थोड़ी बहुत भी मलयुक्त वायु, कीटाणुओं, धूल आदि से इन्हें भारी नुकसान होता है। ऐसी स्थिति में इसकी आवश्यकता है कि अंदर खींचे जाने वाली वायु छनकर जाए। इसके लिए नाक में पर्याप्त व्यवस्था है, वायु स्थित मल, कीट, धूल आदि नाक के बालों से छनकर जाते हैं। इसके पश्चात् आंतरिक क्षेत्र में श्लेष्मा जैसे स्रवित द्रव में उक्त दूषित पदार्थ चिपक जाते हैं और वायु पूर्णरूपेण छनकर जाती है। मुँह से श्वाँस लेने पर वायु जैसी की तैसी अवस्था में श्वाँस संस्थान, फुफ्फुसों वायु नलिकाओं तक पहुँच जाती है और इससे क्षय, दमा, खाँसी आदि फेंफड़ों संबंधी कई बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

(२) वायु एक निश्चित ताप की अवस्था में ही अंदर जाने पर श्वाँस संस्थान ठीक रहता है। यदि शरीर से अधिक कम ताप की वायु अंदर चली जाए तो फुफ्फुसों की श्लेष्मिक कला में शोध उत्पन्न करके उन्हें निर्बल बना देगी, जिससे कोई भी कीटाणु अपनी जड़ सरलता से जमा लेते हैं। मुँह से हवा जैसे ताप की होती है उसी अवस्था में अंदर चली जाती है और वह अस्वास्थ्य कर होती है। नासिका में इसके लिए ऊपरी भाग में तीन टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगें-सी बनी हैं। वहाँ रक्त का संचार बड़ा तीव्र होता है। ली हुई वायु इन सुरंगों में जाकर फैल जाती है और वहाँ उष्ण रक्त के संपर्क में आकर गर्म हो जाती है। इस तरह शीत वायु भी एक निश्चित ताप में अंदर जाती है। प्रकृति की इसी सुविधा के कारण ठंडे और शीत प्रधान क्षेत्रों में रहना संभव होता है। अतः नाक से श्वाँस लेने पर वायु के तापमान का संतुलन हो जाता है। ताप के साथ ही वायु तर भी होती है, नहीं तो शुष्क वायु से खुश्की अनुभव होने लग जाती है।

(३) मुँह से श्वाँस लेने पर बिना परिमाण के एक साथ तेजी से वायु खींच ली जाती है, जो अप्राकृतिक है। वस्तुतः श्वाँस धीरे-२ और लंबी लेना आवश्यक है। उसके लिए नाक उपयुक्त साधन है। नाक से एक ठीक परिमाण में क्रमशः श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया होती है। इस तरह नाक से श्वाँस-प्रश्वाँस करने पर परिमाण और गति में स्वाभाविकता रहती है, नियंत्रण प्राप्त होता है।

(४) नासिका से ही श्वाँस छोड़ने पर श्वाँस लेते समय बालों में फँसे हुए कीट धूल आदि बाहर निकल जाते हैं। मुँह से इस तरह की क्रिया नहीं होती।

(५) नासिका से गंध ज्ञान होता है। अतः ऐसी वायु जो दुर्गंध-युक्त और गंदी हो उससे बचा जा सकता है। मुँह से श्वाँस लेने पर गंध का ज्ञान नहीं होता।

अतः श्वाँस-प्रश्वाँस नाक द्वारा करना ही आवश्यक है। मुँह से श्वाँस-प्रश्वाँस की क्रिया सर्वथा वर्जित है।

(स) शिथिलीकरण मुद्रा

इस मुद्रा का अभ्यास प्राणायाम के बाद शवासन में लेटकर अथवा आराम कुर्सी पर शरीर ढीला छोड़कर किया जाता है। शरीर एवं मन बुद्धि को तनाव मुक्त करके नई स्फूर्ति से भर देने में यह साधना असाधारण रूप से उपयोगी है। साधक को शरीर से भिन्न अपनी सत्ता की प्रत्यक्ष अनुभूति उसके अंतर्गत होती है। अपने अंदर दृष्टा एवं निर्देशक का स्वाभिमान एवं तदनुरूप क्षमता का उदय होता है। इष्ट की गोद में अपने आपको विसर्जित करने का भाव एवं उसके आनंद की अनुभूतियाँ भी इस साधना के अगले चरणों में होती हैं।

इसे साधक स्वयं आत्मनिर्देश से भी करते हैं तथा किसी अन्य साधक के द्वारा बाह्य से भी इसे संपन्न किया जा सकता है। जब जैसी व्यवस्था हो वैसा किया जाना उचित है।

शवासन में लेटकर अथवा आराम कुर्सी पर शिथिल होकर इसे करते हैं स्थान कोलाहल से मुक्त हो, मच्छर मक्खी तंग करें तो

बिजली के पंखे के उपयोग से या शरीर पर हल्की चादर डालकर उससे बचा जा सकता है।

पहले शरीर को शिथिलीकरण के निर्देश दिए जाते हैं। शरीर के निचले अंगों से आरंभ करके ऊपर की ओर यह क्रम चलाया जाता है। हर अंग को एक स्वतंत्र सत्ता मानकर उसे पूर्ण विश्राम करने का स्नेह भरा निर्देश दिया जाता है। ऊपर सिर तक सभी अंगों को निर्देश दिए जा चुकने पर कुछ देर उस स्थिति में छोड़ा जाए। फिर धीरे से श्वाँस तीव्र करके शरीर को कड़ा और ढीला करने का निर्देश दिया जाए। अंगड़ाई, करवट आदि जैसा शरीर माँगे उसे कर दिया जाए। २-३ मिनट बाद उठाकर अगला कार्य प्रारंभ किया जा सकता है।

शारीरिक शिथिलीकरण सधने लगे तो क्रमशः मानसिक शिथिलीकरण एवं दृष्टा रूप से शरीर को पड़ा देखने, चेतना के सरोवर में ईश्वर को वह समर्पित कर देने का भाव किया जा सकता है। शारीरिक शिथिलीकरण से आगे के चरण अधिक अनुभव एवं प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन चाहते हैं।

शिथिलीकरण के तुरंत बाद कठोर श्रम न किया जाए। सहज टहलने, स्वाध्याय आदि जैसे कार्य करने उचित हैं।

(द) प्राणायाम का स्थान और आसन

कोई भी प्राणायाम का अभ्यासी चाहे उसे शारीरिक दृष्टि से करे और चाहे आध्यात्मिक दृष्टि से, पर उसका स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ शुद्ध और ताजा वायु निरंतर आती रहे। इसका अर्थ यह नहीं कि उसके शरीर को तेज वायु का झोंका लगता हो। खुले हुए स्थान में प्राणायाम करना भी बहुत लाभदायक होता है, पर जो लोग आध्यात्मिक दृष्टि से प्राणायाम करते हैं उनको इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि अभ्यास के समय ऐसी कोई बात न हो जिससे एकाग्रता में बाधा पड़े। उसके लिए ध्यान में एकाग्र होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके लिए एक ऐसा हवादार कमरा होना आवश्यक है जो मच्छर, मक्खी, चींटी आदि कीड़े, मकोड़ों के उपद्रव से रहित हो और जहाँ वह निर्बाध रूप से अपनी क्रिया कर

सके। किसी प्रकार विघ्न बाधा की संभावना होने से भी एकाग्रता में कमी पड़ जाती है। अगर वह इस कार्य के लिए एक कमरे को सर्वथा पृथक रख सके और उसमें आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर ले तो इसमें बहुत लाभ हो सकता है।

बैठने के लिए आसन की प्राचीन व्यवस्था ही सर्वोत्तम है। नीचे कुश का आसन बिछाया जाए और उस पर गद्दी या कपड़े का टुकड़ा हो जो नित्य प्रति धोया जा सके। यह आसन बहुत सुखप्रद होता है और योगाभ्यासियों के लिए सब दृष्टियों से सुविधाजनक होता है। आध्यात्मिक मार्ग के साधकों को इस आसन से ऐसी प्रेरणा मिलती है और यह उनको ऐसा आकर्षक जान पड़ता है जैसा कि किसी सम्राट का सिंहासन भी नहीं हो सकता।

जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से प्राणायाम करते हैं उनके लिए भी इस प्रकार आसन में कोई बाधा नहीं हो सकती, वरन् उसको भी इसमें एक अन्य प्रकार का आकर्षण जान पड़ेगा। फिर भी उनके लिए ऐसे आसन पर बैठकर ही प्राणायाम करना अनिवार्य नहीं है।

इस प्रकार शारीरिक दृष्टि से प्राणायाम करने वाले को आसन के संबंध में अधिक ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है, और न उसे इस बात की ही आवश्यकता पड़ती है कि आसन पर बैठकर शरीर को किस दशा में रखा जाए। तो भी अगर वह खड़े होकर प्राणायाम करता है तो सीधा सीना तान कर खड़ा होना चाहिए और दोनों हाथों को कमर की दोनों हड्डियों पर रख लेना चाहिए। इसी प्रकार यदि बैठकर प्राणायाम करना पसंद करे तो भी उसे रीढ़ की हड्डी को और मस्तक को सीधा रखना चाहिए। उसके लिए योगियों के विशेष प्रणाली से बैठने की आवश्यकता नहीं होती, पर आध्यात्मिक दृष्टि से अभ्यास करने योग्य किसी आसन पर जैसे सिद्धासन, पद्मासन स्वास्तिकासन आदि पर बैठना होता है। इनमें से पद्मासन में पैर की नसों पर अधिक दबाव पड़ता है, इसलिए सामान्यतः सिद्धासन, वज्रासन व स्वास्तिकासन अभ्यास करने वाले को सुविधाजनक होते हैं। इन्हें किन्हीं भी आसनादि की पुस्तक से पढ़कर अथवा क्रमशः मार्ग दर्शक से पूछकर किया जा सकता है।

(इ) प्राणायाम सहित कुछ सरल व्यायाम

जो लोग प्राणायाम से केवल शारीरिक लाभ ही उठाना चाहते हैं, उनके लिए सबसे अच्छी विधि सरल व्यायाम के साथ श्वाँस को खींचना और निकालना (पूरक और रेचक) करना है। इन व्यायामों में कोई विशेषता नहीं होती और ये पूर्णतः स्कूलों में लड़कों को कराई जाने वाली 'ड्रिल' की तरह ही होते हैं। दोनों में अंतर यही है कि स्कूली ड्रिल में साँस के आवागमन पर कोई खास ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि इन व्यायामों में बराबर श्वाँस को खींचने और निकालने (पूरक और रेचक) पर पूरा ध्यान दिया जाता है और नियम का पालन किया जाता है। इसके फलस्वरूप श्वास यंत्र (फेंफड़े) और हृदय की शक्ति बढ़ती है और बाहरी अंगों के साथ भीतरी अवयवों में भी मजबूती आती है।

(१) व्यायाम करने के स्थान पर सीधे खड़े हो जाएँ, पैरों से शिर तक सारा शरीर एक सीध में खड़ा रहे दोनों हाथों को तने हुए सामने ऊपर की ओर उठाएँ और धीरे-धीरे ऊपर से जाएँ। सिर के ऊपर जाने पर धड़ भी पीछे झुकने लगेगा, किंतु कमर से नीचे का भाग बिल्कुल सीधा रहे हाथों को ऊपर होकर पीछे की ओर जितना झुकाया जा सके, झुकाएँ। इस क्रिया के साथ धीरे-धीरे पूरक करते जाएँ। ज्यों-ज्यों हाथ ऊपर उठाते जाएँ उसी के साथ पूरक से धीरे-धीरे फुफ्फुस वायु से भरते जाएँगे।

जब हाथ पूर्णरूपेण पीछे जहाँ तक बने झुकाए जाएँ उससे आगे फिर हाथों को वापिस सामने लौटाया जाए। स्मरण रहे हाथ तने हुए रहें। दोनों हाथों को क्रमशः धीरे-धीरे झुकाते हुए भूमि पर टिका दें। पैर, हाथ, धड़ आदि सीधे रहेंगे कहीं से मुड़ें नहीं। इसी क्रिया के शुरू होने के साथ रेचक करना शुरू करें और जमीन पर हाथ टिकाने तक फुफ्फुसों से संपूर्ण वायु रिक्त हो जाए। दोनों हाथ पैर भूमि पर टिकी हुई अवस्था में ही बाह्य कुंभक करें। अपनी सामर्थ्य के अनुसार इसी अवस्था में रहें।

दोनों क्रियाओं से इस व्यायाम की पूर्णता होती है। दोनों मिलाकर कम से कम चार पाँच बार यह व्यायाम करे और धीरे-धीरे बढ़ाते रहें।

दोनों क्रियाओं से इस व्यायाम की पूर्णता होती है। दोनों मिलाकर कम से कम चार-पाँच बार यह व्यायाम करे और धीरे-धीरे बढ़ाते रहें।

(२) सीधे खड़े हो जाएँ। पंजे खुले हुए रखें। एड़ियाँ मिली रहें। दोनों हाथ कमर पर रख लें। पंजों के बल भूमि से ऊपर उचकें। फिर उसी स्थान में आ जाएँ फिर पूर्व स्थिति हो जाएँ।

इसी तरह दूसरी विधि के अंतर्गत उछलते हुए दोनों पाँवों को चौड़ा कर और उसी अवस्था में भूमि पर स्थित करें। ऐसी हालत में लगभग डेढ़ फुट का अंतर रहे। फिर उछलकर पूर्व स्थिति में आ जाएँ। इसी तरह कई बार करें। यह अभ्यास तीव्रगति से करना चाहिए। इसी बीच श्वाँस-प्रश्वाँस भी गहराई के साथ लिए जाएँ।

(३) दोनों पैरों के बीच में लगभग डेढ़ फुट का अंतर रखकर खड़े हो जाएँ। दोनों की मुट्ठियाँ बाँध लें। कोहनियों पर से हाथों को मोड़ते हुए वेगपूर्वक कंधों से स्पर्श करें। दोनों कोहनियाँ धड़ से ८-८ इंच दूर रहेंगी तदंतर वेगपूर्वक दोनों भुजाओं को ऊपर की ओर तान दें। मुट्ठियाँ पूर्ववत बंधी रहें। हाथों का अंतर भी इस तरह रहेगा। इस स्थिति में गहराई के साथ रेचक करें। अब भुजाओं को तेजी के साथ ऊपर से नीचे की ओर लाकर प्रथम स्थिति में आ जाएँ। इसके साथ ही गंभीरता से पूरक करें। इस व्यायाम को कई बार करें।

(४) सीधे खड़े रहें। दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधें और उन्हें वेगसहित शक्तिपूर्वक पार्श्व भाग में उठाकर कंधों की सीध में स्थित करें, मुट्ठियाँ बँधी रहेंगी। उसके साथ ही पूरक करें। इसके बाद दोनों हाथों को वेगपूर्वक नीचे गिरा दें और बगलों में स्थित करें। इसके साथ रेचक करें।

(५) दोनों मुट्ठियों को बलपूर्वक सामने लाएँ और इसी के साथ रेचक करें। मुट्ठियाँ सामने एक सीध में दोनों पार्श्व में स्थित करें। मुट्ठियाँ बंद रहेंगी इसके साथ ही पूरक करें। इस क्रिया को कई बार करें।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा